प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सहमति से

तीसरी बार : १९५५

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक
[illegible] प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

पाठक जानते हैं कि गांधीजी दूसरी गोलमेज में शामिल होने लंदन गये थे और परिषद के सामने उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में हमारे देश की मांग उपस्थित की थी। उसी अवसर पर दिये गए गांधीजी के भाषण इस पुस्तक में प्रकाशित किये गए हैं। बात पुरानी हो गई है पर वह इतिहास की एक ऐसी घटना है, जिसे कोई भी राष्ट्र-प्रेमी भूल नहीं सकता। यद्यपि तबसे स्थिति बदल गई है, तथापि उन भाषणों के प्रकाश में वर्तमान को देखने से लाभ ही होगा।

वैसे गांधीजी गोलमेज-परिषद् के निमित्त गये थे लेकिन उनका काम परिषद् तक ही सीमित नहीं रहा था। उन्होंने भारत के संदेश को व्यापक रूप से फैलाने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली। उसका विस्तृत विवरण 'इंग्लैण्ड में गांधीजी' नामक पुस्तक में हमने प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। दूसरा संस्करण 'राष्ट्रवाणी' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में उसका नाम पुनः 'हमारी मांग' कर दिया गया है।

आशा है, पाठक इस तथा इसकी पूरक 'इंग्लैण्ड में गांधीजी' पुस्तक को ध्यान से पढ़ेंगे और स्थायी साहित्य के रूप में सुरक्षित रखेंगे।

इसका अनुवाद श्री शंकरलाल वर्मा ने किया है जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं।

—मंत्री

विषय सूची

हमारी मांग

१ :

राष्ट्रीय मांग

आरम्भ में ही मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आपके सामने महासभा की स्थिति रखने में मुझे ज़रा भी सुविधा नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूं कि इस उप-समिति में और यथासमय गोलमेज़-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए मैं सर्वथा सहयोग के भाव लेकर और अपनी शक्ति भर समझौते का उपाय करने के उद्देश्य से ही लन्दन आया हूं। साथ ही मैं सम्राट् की सरकार को यह विश्वास दिला देना चाहता हूं कि किसी भी अवस्था में अधिकारियों को कठिनाई में डालने की मेरी इच्छा न है, न आगे होगी। और यही विश्वास मैं यहां के अपने साथियों को दिला देना चाहता हूं कि हमारे दृष्टिकोण में कितना ही अन्तर हो मैं किसी भी प्रकार या रूप से उनके मार्ग में रुकावट न डालूंगा। इसलिए मेरी स्थिति यहां पर सर्वथा आपकी और सम्राट् की सरकार की सद्भावना पर निर्भर करती है। किसी भी समय यदि मुझे यह मालूम हुआ कि इस परिषद् में मेरी कुछ उपयोगिता नहीं है तो इससे अलग हो जाने में मुझे ज़रा भी हिचकिचाहट न होगी। इस उप-समिति और परिषद् के प्रबन्धकों से भी मैं यही कहना चाहता हूं कि उनके केवल संकेतमात्र से मैं अलग हो जाने में ज़रा भी न हिचकिचाऊंगा।

ये बातें इसलिए कहनी पड़ती हैं कि मैं जानता हूं कि सरकार और महासभा के बीच मौलिक मतभेद है—और सम्भव है कि मेरे साथियों

और मुझमें भी महत्वपूर्ण मतभेद हो—और मैं एक मर्यादा से बंधा हुआ हूं, जिसके अन्तर्गत मुझे काम करना होगा। मैं तो भारतीय राष्ट्रीय महासभा का एक गरीब और विनम्र प्रतिनिधि मात्र हूं। इसलिए हमारे लिए यह बता देना अच्छा होगा कि महासभा क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। तब आप मेरे साथ सहानुभूति करेंगे क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे कन्धों पर जिम्मेदारी का जो बोझ है वह बहुत भारी है।

यदि मैं गलती नहीं करता हूं, तो महासभा भारतवर्ष की सबसे बड़ी संस्था है। उसकी अवस्था लगभग ५ वर्ष की है और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्वभारतीय हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज मस्तिष्क में हुई। एलन ओक्टेवियस ह्यूम को कांग्रेस के पिता की तरह हम जानते हैं। दो महान पारसियों—फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है इसका पोषण किया। अपने आरम्भ से ही महासभा में मुसलमान ईसाई, एंग्लो-इंडियन आदि शामिल थे या मुझे यों कहना चाहिए, इसमें सब धर्म सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने आपको महासभा के साथ मिला दिया था। मुसलमान और निस्सन्देह पारसी भी महासभा के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से कम एक भारतीय ईसाई भी डब्ल्यू सी बनर्जी का नाम भी ले सकता हूं। विशुद्ध भारतीय भी कालीचरण बनर्जी ने जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ अपने को महासभा के साथ मिला दिया था। मैं और निस्सन्देह आप भी अपने बीच मि० के० टी० पाल का

प्रभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं नहीं जानता लेकिन जहाँ तक मुझे मालूम है, वे अधिकारी रूप से कभी महासभा में शामिल नहीं हुए, फिर भी वे पूरे राष्ट्रवादी थे।

जैसा कि आप जानते हैं स्वर्गीय मौ मुहम्मदअली जिनकी उपस्थिति का भी आज यहाँ अभाव है महासभा के सभापति थे और इस समय महासभा की कार्यसमिति के १५ सदस्यों में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रियाँ भी हमारी महासभा की अध्यक्षता कर चुकी हैं—पहली श्री एनी बेसेण्ट थीं और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू। श्रीमती नायडू कार्य समिति की सदस्या भी हैं। इस प्रकार यदि हमारे यहाँ जाति और धर्म का भेदभाव नहीं है तो किसी प्रकार का लिंगभेद भी नहीं है।

महासभा ने अपने आरम्भ से ही कथित 'अछूतों' के नाम को अपने हाथ में ले रक्खा है। एक समय था जबकि महासभा अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के साथ अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी जिसके काम को स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कार्यों में का एक बना कर उसे अपनी शक्तियाँ समर्पित की थी। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व में सामाजिक परिषद् के कार्यक्रम में अछूतों के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था किन्तु सन् १९२ में महासभा ने एक बड़ा कदम बढ़ाया और अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मंच का एक आधार-स्तम्भ मानकर राजनैतिक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना दिया। जिस प्रकार महासभा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और इस प्रकार सब जातियों के परस्पर ऐक्य को स्व राज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी उसी तरह पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए छुआछूत के पाप को दूर करना भी वह अनिवार्य समझने लगी।

सन् १९२ में सभा में जो स्थिति ग्रहण की थी वही आज भी बनी हुई है और इसलिए आप देखेंगे कि महासभा ने अपने आरम्भ से ही अपने-आपको सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि आरम्भ में ही महासभा ने आपकी भी सेवा की है। मैं इस समिति को याद दिलाता हूँ कि वह व्यक्ति भारत का वृद्ध पितामह ही था जिसने कश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेकर सफलता को पहुँचाया था और मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये दोनों बड़े राज्य भी दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं हैं। अबतक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करके महासभा उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है।

मैं आशा करता हूँ कि इस संक्षिप्त परिचय से जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा समिति और जो महासभा के दावे में दिलचस्पी रखते हैं वे जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप महासभा का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक महासभा मूल रूप में अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७ लाखों गाँवों में बिखरे हुए करोड़ों मूक अर्द्धनग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है। यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी राज्यों के। इसलिए महासभा के मत से प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है इन लाखों मूक प्राणियों के हित का साधक होना चाहिए। आप समय-समय पर विभिन्न हितों में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं; परन्तु, यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो मैं महासभा की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखों मूक प्राणियों के हित के लिए महासभा प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी क्योंकि यह आवश्यक रूप से किसानों की संस्था है और यह अधिकाधिक बनती जा रही है। आपको और कदाचित् इस समिति के भारतीय

भारतवासियों को भी यह जानकर आश्चर्य होगा कि महासभा ने अपने 'अखिल भारतीय चर्खा-संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा क़रीब दो हज़ार गाँवोंकी लगभग ५ हज़ार स्त्रियों* को रोजगार में लगा रखा है, और इन स्त्रियों में सम्भवतः ५ प्रतिशत मुसलमान स्त्रियाँ हैं। उनमें हज़ारों अछूत कहाने वाली जातियों की भी महिलाएं हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गाँवों में प्रवेश कर चुके हैं और ७ गाँवों में प्रत्येक गाँव में प्रवेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह काम मनुष्य की शक्ति के बाहर का है; किन्तु मनुष्य के प्रयत्न से ही हो सकता है। इस प्रकार आप महासभा को इन सब गाँवों में फैली हुई और उन्हें चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।

महासभा का यह प्रतिनिधि-रूप होने से जब मैं आपको उसका आदेश पढ़कर सुनाऊंगा तो आपको उससे आश्चर्य न होगा। मैं आशा करता हूँ कि यह आपको विसंगत एवं अप्रिय प्रतीत न होगा। आप भले ही ऐसा समझें कि महासभा जो दावा कर रही है वह सर्वथा असमर्थनीय है। जैसा भी कुछ है, मैं उसकी ओर से नम्र तरीके पर, किन्तु पूरी-पूरी दृढ़ता के साथ उस दावे को यहाँ पेश करूँगा। मैं अपने पूरे विश्वास और शक्ति के साथ उस दावे को पेश करने के लिए यहाँ आया हूँ। यदि आप मुझे इसके विपरीत समझा सकेंगे और यह बता सकेंगे कि यह दावा इन लाखों मूक मनुष्यों के प्रतिकूल है तो मैं अपनी सम्मति पर पुनर्विचार करूँगा। मैं अपने विचारों में संशोधन करने को तैयार हूँ किन्तु महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से उपयोगी हो सकने के लिए यह आवश्यक है कि इस संशोधन के पूर्व मैं अपने मुखियाओं—महासभा के नेताओं—से इस सम्बन्ध में परामर्श कर लूँ। अब यहाँ पर मैं महासभा का वह आदेश आपको पढ़कर सुनाना चाहता

*चर्खा-संघ के ताजे आंकड़ों से मालूम होता है कि अब यह संख्या १८ ।

हूं जिससे कि मास मुकरर लगाई गई मर्यादाओं को अच्छी तरह समझ सकें। कराची-महासभा ने यह प्रस्ताव पास किया था—

"यह महासभा अपनी कार्यसमिति और भारत सरकार में हुए अस्थाई समझौते पर विचार कर, उसे स्वीकार करती है और यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि महासभा का पूर्ण स्वराज्य का ध्येय जिसका अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता है, ज्यों-का-त्यों कायम है। यदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों की किसी परिषद में महासभा के सम्मिलित होने का द्वार खुला रहे तो महासभा का प्रतिनिधि उक्त ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करेगा और खासकर सेना अन्तर्राष्ट्रीय मामले, अर्थ-विभाग राजस्व और आर्थिक नीति पर देश का पूर्ण अधिकार हो और ब्रिटिश सरकार और भारत के बीच आर्थिक लेन-देन के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करने और भारत अथवा इंग्लैंड द्वारा उठाई जाने वाली कर्ज की जिम्मेवारी का निश्चय एक निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने और दोनों पक्षों में से किसी की भी इच्छा होने पर साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे इसका प्रयत्न करेगा। लेकिन महासभा के प्रतिनिधि को यह स्वतन्त्रता रहेगी कि वह ऐसे समझौते को स्वीकार कर ले, जो साफ तौर पर भारत के हित के लिए आवश्यक हो।

इस प्रस्ताव के अनुसार प्रतिनिधि का निर्वाचन हुआ। इस आदेश को ध्यान में रखते हुए मैंने गोलमेज-परिषद द्वारा नियुक्त उपसमितियों के अस्थाई निर्णयों का यथासाध्य ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। साथ ही मैंने प्रधानमंत्री के उस वक्तव्य का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है जिसमें उन्होंने सम्राट्-सरकार की नीति बतलाई है। मेरे कथन में कुछ भूल हो तो वह दुरुस्त की जा सकती है; लेकिन जहां तक मैं समझ सकता हूं महासभा का जो उद्देश्य और दावा है उससे यह वक्तव्य कहीं पीछे है। यह ठीक है कि मुझे ऐसे सुधार स्वीकार कर लेने की स्वतन्त्रता है जो साफ तौर पर भारत के हित में हों लेकिन वे सब उक्त आदेश की वर्णित मूल विषय के अनुकूल होने चाहिए।

ब्रिटिश साम्राज्य का नहीं बल्कि ब्रिटिश राष्ट्रसंघ का यदि संभव हो तो एक साझेदारी में और ईश्वर ने चाहा तो अविभाज्य साझेदारी में भागीदार बनूं। किन्तु ऐसी साझेदारी में हर्गिज नहीं जो एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर जबर्दस्ती लादी हो। इसलिए आप देखेंगे कि महासभा ने यह दावा किया है कि दोनों पक्षों को यह सम्बन्ध-विच्छेद करने साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे। इसलिए यह साझेदारी आवश्यक रूप से दोनों के लिए हितकारक होनी चाहिए। यद्यपि विचारशील विषय से यह असंगत होगा किन्तु मेरे लिए असंगत नहीं। यदि मैं यह कहूं जैसा कि मैंने अन्यत्र भी कहा है कि मैं आज जिम्मेदार ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों के अपनी आमदनी के अन्दर खर्च चला लेने के घरेलू मामलों में पूर्ण रूप से फंसे रहने की बात को अच्छी तरह समझ सकता हूं। हम उनसे इससे कम किसी बात की आशा नहीं कर सकते थे और जब मैं लन्दन की ओर रवाना हो रहा था मुझे ख्याल आया कि क्या हम इस समिति के सदस्य इस समय ब्रिटिश-मन्त्रियों के सिर पर बोझ न होंगे? क्या हम दखलन्दाज न होंगे? फिर भी मैंने अपने आपसे कहा कि यह सम्भव है कि हम दखलन्दाज न हों। सम्भव है कि अपने घरेलू मामलों में फंसे रहने पर भी ब्रिटिश मंत्री स्वयं यह अनुभव करें कि गोलमेज-परिषद् की कार्रवाई उनके लिए प्रधानतः आवश्यक है। हां तलवार के बल पर भारत पर कब्जा रक्खा जा सकता है किन्तु इंग्लैण्ड की समृद्धि के लिए, ग्रेटब्रिटेन की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए क्या हितकर होगा? एक गुलाम किन्तु बागी हिन्दुस्तान या ब्रिटेन की आपत्तियों में हिस्सा बंटाने वाला और उसकी मुसीबतों में कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर उसकी सहायता करने वाला प्रतिष्ठित साझेदार भारत?

हां यदि आवश्यकता हुई, तो केवल अपनी इच्छा से संसार की किसी एक जाति अथवा अकेले एक व्यक्ति की स्वार्थ-साधना के लिए नहीं वरन् प्रत्यक्षतः समस्त संसार के लाभ के लिए भारत इंग्लैण्ड के साथ-साथ लड़ेगा। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूं तो

प्राप विश्वास रखिए कि यदि मैं उसकी प्राप्ति में सहायक हो सकता हूं,तो उस देश का निवासी होने के कारण जिसमें संसार की एक पंचमांश मनुष्य-जाति निवास करती है मैं उसे इसलिए नहीं चाहता कि मैं संसार की किसी जाति अथवा व्यक्ति को चूसूं। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहूं तो म उसके लिए उपयुक्त न होऊंगा यदि मैं प्रत्येक जाति के चाहे वह गरीब हो या शक्तिशाली वैसी ही स्वतन्त्रता के समान अधिकार को स्वीकार न करूं। और इसलिए जब मैं आपके सुन्दर द्वीप के निकट पहुंचने लगा तो मने अपने मन में कहा—सम्भव है संयोग से यह सम्भव हो जाय कि मैं ब्रिटिश-मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकूं कि शक्ति के बल से मर्यादित नहीं बरन् प्रेम की रेशमी डोरी में बंधा हुआ भारत आपके एक साल के बजट को ही नहीं प्रत्येक वर्षों के बजट को ठीक करने में सच्चा सहायक सिद्ध होगा। ऐसे दो राष्ट्र यदि मिल जायं तो क्या नहीं कर सकते—जिनमें एक मुट्ठीभर होने पर भी बहादुर है तथा जिसकी बहादुरियों का मेला कदाचित अनुपम है, जो गुलामी की प्रथा से युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध है और जिसका एक बार नहीं अगणित बार कमजोरों की रक्षा करने का दावा है; और दूसरा एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है करोड़ों की आबादी वाला है, शानदार भूतकाल जिसके पीछे है, हाल में जो दो महान इस्लाम और हिन्दू संस्कृतियों का प्रतिनिधि है, जिसमें एक बहुत बड़ी तादाद में ईसाई आबादी भी है तथा जिसमें संख्या में अंगुलियों पर गिने जाने योग्य किन्तु परोपकार और व्यवसाय में बढ़े हुए पारसी हैं। भारतवर्ष में इन सब संस्कृतियों का केन्द्रीकरण हुआ है। यह कल्पना कर लें कि ईश्वर यहां एकत्रित हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियों को ऐसी सद्बुद्धि देता है कि वे आपसी मतभेद को भूलकर आराम से सम्मानप्रद समझौता कर लेते हैं। वह देश और यह देश दोनों एकसाथ सोचिए। मैं फिर अपने से और आपसे यह प्रश्न करता हूं कि क्या एक स्वाधीन भारत ग्रेटब्रिटेन की तरह पूर्ण स्वतन्त्र भारत और ब्रिटेन इन दोनों देशों की सम्मानप्रद

साझेदारी शर्तों के लिए सामञ्जस्य नहीं हो सकती ? क्या यह इस महान राष्ट्र के घरेलू मामलों तक में सद्भावना नहीं हो सकता ? मैं इस आशा का स्वप्न लेकर यहां पहुंचा हूं और अभी तक उस सुख-स्वप्न को कायम रख रहा हूं।

इतना कह चुकने पर कदाचित् अब मेरे लिए विशेष कुछ कहने को नहीं रह जाता। फिर आप लोग तफसीली बातें तय करते रहेंगे और मुझे आपको यह बताने की जरूरत न रहेगी कि सेना के नियन्त्रण अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और अर्थ-विभाग पर अधिकार तथा राजस्व और आर्थिक नीति के संचालन आदि से मेरा क्या आशय है। मैं तो आर्थिक लेन-देन के प्रश्न की तफसील में जिसे कल एक मित्र ने अत्यन्त पवित्र प्रश्न बताया था नहीं पड़ना चाहता। मैं उनके विचार से सहमत नहीं हूं। यदि किसी साझेदार का हिसाब होना हो तो उसके लेखे-जोखे की जांच और जोड़-तोड़ की आवश्यकता रहती है और महासभा यह कहकर किसी अभिप्रायकरण की दोषी न बनेगी कि राष्ट्र अपने तई यह समझ ले कि यह कितनी जिम्मेदारी अपने सिर पर लेगा और कितनी नहीं उसे लेनी चाहिए। इस जांच और निरीक्षण की मांग केवल भारत के ही हित के लिए नहीं वरन् दोनों देशों के हित के लिए है। मुझे निश्चय है कि ब्रिटिश जनता भारत पर कोई ऐसा बोझ नहीं लादना चाहती जो न्यायतः उसे नहीं उठाना चाहिए, और महासभा की ओर से यहां मैं यह घोषित कर देना चाहता हूं कि महासभा किसी भी ऐसे दावे या जिम्मेदारी से इन्कार न करेगी जो न्यायतः उसे उठानी चाहिए। यदि हमें समस्त संसार का विश्वासपात्र बनकर एक प्रतिष्ठित राष्ट्र की तरह रहना है तो उचित कर्ज की हम एक-एक पाई अपने खून तक से चुकायेंगे

मैं नहीं समझता कि आपको महासभा के इस प्रस्ताव की तफसील में ले जाऊं और उसकी प्रत्येक धारा का महासभा के शब्दों में अर्थ समझाऊं। यदि ईश्वर ने चाहा कि समिति आगे की कार्रवाई में जैसे

चाहता हूं जो सोमवार से मुझे क्लेश पहुंचा रहा है। मैं उन बहसों को जो इस समिति में होती रही है बड़े गौर से देखता रहा हूं। मैंने प्रतिनिधियों की सूची का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जो पहले नहीं कर पाया था और सबसे पहला दुखद भाव जो मेरे मन में पैदा हुआ वह यह कि हम लोग राष्ट्र के जिसका प्रतिनिधित्व हमें करना चाहिए, चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं बल्कि हम लोग सरकार के चुने हुए हैं। मैं भारत के भिन्न-भिन्न पक्षों और दलों को अनुभव से जानता हूं इसलिए जब मैं सूची पर गौर करता हूं तो मैं देखता हूं कि यहां ऐसे कुछ व्यक्तियों का अभाव है जिनकी उपस्थिति आवश्यक थी। इससे मैं प्रतिनिधियों के चुनाव के सम्बन्ध में अस्वाभाविकता के भाव से दुखी हूं।

अस्वाभाविकता अनुभव करने का मेरा दूसरा कारण यह है कि इन कार्रवाइयों का अन्त होगा और वे हमें वास्तव में किसी ओर ले जायगी यह मुझे दिखाई नहीं पड़ता है। यदि हम लोग इसी प्रकार से आगे बढ़ें तो मैं नहीं समझता कि इस समिति में उठे हुए बहुत-से प्रश्नों पर बहस कर चुकने के बाद हम किसी नतीजे पर पहुंच सकेंगे।

इसलिए, लार्ड चान्सलर महोदय सबसे पहले मैं अपनी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ प्रकट करूंगा कि आप बड़े धैर्य और सौजन्य से पेश आ रहे हैं। मैं सचमुच आपको इस कष्ट के लिए, जो आप इस समिति में उठा रहे हैं धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि आपका और हमारा काम पूरा होने पर, मेरे लिए यह सम्भव होगा कि हम लोगों को कुछ वास्तविक परिणाम देखने योग्य बनाने या विवश किये जाने पर मैं फिर आपको बधाई दूं।

क्या मैं यहां पर सम्राट् के सलाहकारों के खिलाफ एक नम्र और विनीत शिकायत कर सकता हूं? हम लोगों को समुद्र-पार से लाकर इकट्ठा करके—और मैं जानता हूं कि इस बात को जानते हुए कि बिना किसी अपवाद के हममें से सब लोग इसी तरह अपने कामों में संलग्न हैं,

जैसे कि वे स्वयं हैं हम लोग अपने-अपने कामों को छोड़ कर यहां इकट्ठे हुए हैं—क्या यह उनके लिए सम्भव नहीं कि वे हमें रास्ता दिखावें? क्या मैं आपके द्वारा उनसे दरख्वास्त नहीं कर सकता कि वे हमें बतावें कि उनके विचार क्या हैं? क्या मैं आपके सामने यह कहने का साहस करूं कि मैं प्रसन्न होऊंगा और मेरा ख्याल है कि यही ठीक तरीका होगा कि वे हम लोगों की सम्मति लेने के लिए हमारे सामने अपने निश्चित प्रस्ताव रक्खें? यदि ऐसा किया गया तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग किसी-न-किसी निर्णय पर पहुंच सकेंगे फिर वह चाहे अच्छा हो या बुरा सन्तोषजनक हो अथवा असन्तोषजनक। इसके विपरीत यदि हम लोग इस समिति को बहस-मुबाहिसे की समिति बना दें जिसका हरेक सदस्य जुदे-जुदे मुद्दों पर धारा प्रवाह भाषण दे तो मैं नहीं समझता कि हम लोग उस ध्येय की कोई सेवा कर सकेंगे और उसे आगे बढ़ा सकेंगे जिसके लिए कि हम लोग यहां इकट्ठे हुए हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आप कर सकें तो यह लाभदायक होगा कि एक उप-समिति मुकर्रर कर दी जाय जो किसी नतीजे पर पहुंचने के लिए आपको कुछ विचार दे सके जिससे हमारी कार्रवाई उचित समय में खतम हो जाय। मैंने केवल आपके तथा सदस्यों के विचार के लिए ही इन सूचनाओं को आपके सामने रक्खा है जिससे कदाचित् आप कृपा कर सम्राट् के सलाहकारों के सामने ये सूचनाएं विचारार्थ पेश करें।

मैं चाहता हूं कि वे हमें रास्ता बतावें और अपनी भावनाएं सबके सामने रक्खें। मैं चाहता हूं कि वे हमें बतावें कि मान लीजिए यदि हम लोग कहीं अपने आपस का निपटारा करने के लिए पंच नियुक्त करें तो वे क्या करेंगे? यदि वे हमारी राय और अलग सोचने की असमर्थता दिखावेंगे तो हम लोग अपनी-अपनी राय देंगे। यह वास्तव में एक अच्छा उपाय होगा बनिस्बत इसके कि हम लोग निराशाजनक अनिश्चित दशा तथा अतीव विलम्ब की अवस्था में पड़े रहें।

इतना कहने के बाद अब मैं 'दूसरे शीर्षक' के अन्तर्गत विचाराधीन प्रश्नों पर कुछ तजवीज पेश करने का साहस करूंगा। मेरी वही कठिनाई है जिसका सामना सर तेजबहादुर सप्रू को करना पड़ा। यदि मैं उन्हें ठीक-ठीक समझा हूं तो उनका कहना है कि वह इस बात से परेशान हो गए कि उनसे विभिन्न शीर्षकान्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों पर बोलने को तो कहा गया किन्तु उन्हें यह न बताया गया कि वास्तव में मताधिकार क्या होगा व उनकी तरह उसी कठिनाई का सामना मुझे भी करना पड़ेगा। लेकिन मेरे सामने एक दूसरी कठिनाई और भी है। मैं उप-समिति के सामने महासभा के आदेश को पेश कर चुका हूं। उसी आदेश के अनुसार मुझे प्रत्येक उप-शीर्षक पर बहस करनी होगी। इसलिए इन उप-शीर्षकों में से कुछ पर मैं महासभा के आदेश के अनुसार अपनी तजवीज और सम्मति पेश करूंगा। यदि उप-समिति इस बात को नहीं जानती कि उसका उद्गम क्या है तो मेरी सम्मति का जो मैं दूंगा उप-समिति के लिए, वास्तव में कोई मूल्य नहीं होगा। उक्त आदेश की दृष्टि से ही मेरी राय की कीमत हो सकती है। जब मैं उन शीर्षकों पर विचार करूंगा तब मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

उप-शीर्षक (१) के सम्बन्ध में जब कि मेरी सहानुभूति व्यापक रूप से डा० अम्बेडकर के साथ है, मेरी बुद्धि सर्वथा श्री श्रीनिवास शास्त्री तथा सर सुलतान मुहम्मद की ओर जाती है। यदि हमारी उप-समिति एक-विचार की होती जिसके सदस्य मत देकर निर्णय करने के अधिकारी होते तो उस दशा में मैं डा० अम्बेडकर के साथ बहुत दूर तक जा सकता था लेकिन हमारी स्थिति वैसी नहीं है। वर्तमान उप-समिति बड़ी विभिन्न है उसका प्रत्येक सदस्य या सदस्या पूर्ण स्वतन्त्र और अपने विचार प्रकट करने का या की अधिकारी या अधिकारिणी है। ऐसी दशा में मेरी नम्र सम्मति में हमें रियासतों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे क्या करें और क्या न करें। वे रियासतें बड़ी उदारता के साथ हमारी सहायता करने के लिए आगे आई हैं और कहती हैं

कि वे हमारे साथ संघ में शामिल होंगी और कदाचित् अपने वे कुछ अधिकार भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जायं जिनका विपरीत दशा में वे अकेले ही उपभोग करती। उस हालत में मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकता कि सर सुलतान अहमद की इस राय का जिसकी कि मी गोविन जोन्स ने भी ताईद की है समर्थन करूं कि अधिक-से अधिक हम जो कर सकते हैं वह यही है कि हम रियासतों से विनय करें और उन्हें अपनी निजी कठिनाइयां बतायें किन्तु इसके साथ ही मैं यह खयाल करता हूं कि हमें उनकी खास कठिनाइयों को भी समझ लेना चाहिए।

इसलिए मैं उन महान नरेशों के विचार के विचारार्थ एक या दो सूचनाएं पेश करने का साहस करूंगा और यह निवेदन करूंगा जनता का जनता की ओर से निर्वाचित समाज की निम्नातिनिम्न श्रेणी का एक प्रतिनिधि होने की हैसियत से। मैं उनसे विनती करूंगा कि वे जो कोई भी योजना तैयार करें और समिति के सामने स्वीकृति के लिए पेश करें, उनके लिए उचित होगा कि वे उस योजना में प्रजा का भी ध्यान रक्खें। मैं यह खयाल करता हूं और जानता हूं कि उनके हृदयों में उनकी प्रजा का हित है। मैं जानता हूं वे उनके हितों की रक्षा का उत्साह के साथ दावा करते हैं। किन्तु यदि सब बातें ठीक हुईं तो वे 'प्रजाकीय भारत'—यदि ब्रिटिश भारत को मैं यह नाम दूं—के साथ अधिकाधिक सम्पर्क में आवेंगे और उस भारत के निवासियों के साथ उसी तरह समान हित स्थापित करना चाहेंगे जिस प्रकार 'प्रजाकीय भारत' 'नरेशों के भारत' के साथ समान हित स्थापित करना चाहेगा। अन्त में कुछ भी हो दोनों भारतों में वस्तुतः कोई भी तात्त्विक या सच्चा भेद नहीं है। यदि कोई एक जीवित शरीर को दो हिस्सों में बांट सकता हो तो भारत भारत को दो हिस्सों में बांट सकते हैं। अज्ञात समय से यह एक देश की तरह चला आया है और कोई भी कृत्रिम सीमा उसे विभाजित कर नहीं सकती। नरेशों की

इतना कहने के बाद अब मैं 'दूसरे शीर्षक' के अन्तर्गत विचारणीय प्रश्नों पर कुछ तजवीज पेश करने का साहस करूंगा। मेरी वही कठिनाई है जिसका सामना सर तेजबहादुर सप्रू को करना पड़ा। यदि मैं उन्हें ठीक-ठीक समझा हूं तो उनका कहना है कि वह इस बात से परेशान हो गए कि उनसे विभिन्न शीर्षकान्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों पर बोलने को तो कहा गया किन्तु उन्हें यह न बताया गया कि वास्तव में मताधिकार क्या होगा व उनकी तरह उसी कठिनाई का सामना मुझे भी करना पड़ेगा। लेकिन मेरे सामने एक दूसरी कठिनाई और भी है। मैं उप समिति के सामने महासभा के आदेश को पेश कर चुका हूं। उसी आदेश के अनुसार मुझे प्रत्येक उप-शीर्षक पर बहस करनी होगी। इसलिए इन उप-शीर्षकों में से कुछ पर मैं महासभा के आदेश के अनुसार अपनी तजवीज और सम्मति पेश करूंगा। यदि उप-समिति इस बात को नहीं जानती कि उसका उद्देश्य क्या है तो मेरी सम्मति का जो मैं दूंगा उप समिति के लिए, वास्तव में कोई मूल्य नहीं होगा। उक्त आदेश की दृष्टि से ही मेरी राय की कीमत हो सकती है। जब मैं इन शीर्षकों पर विचार करूंगा तब मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

उप-शीर्षक (१) के सम्बन्ध में जब कि मेरी सहानुभूति व्यापक रूप से डा० अम्बेडकर के साथ है, मेरी बुद्धि सर्वथा श्री जोशिम जोन्स तथा सर सुलतान अहमद की ओर जाती है। यदि हमारी उप-समिति एक-विचार की होती जिसके सदस्य मत देकर निर्णय करने के अधिकारी होते तो उस दशा में मैं डा० अम्बेडकर के साथ बहुत दूर तक जा सकता था लेकिन हमारी स्थिति वैसी नहीं है। वर्तमान उप-समिति वही जैसी है उसका प्रत्येक सदस्य या सदस्या पूर्ण स्वतन्त्र और अपने विचार प्रकट करने का या की अधिकारी या अधिकारिणी है। ऐसी दशा में मेरी नम्र सम्मति में हमें रियासतों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे क्या करें और क्या न करें। ये रियासतें बड़ी उदारता के साथ हमारी सहायता करने के लिए आगे आई हैं और कहती हैं

कि वे हमारे साथ संघ में शामिल होंगी और कदाचित् अपने वे कुछ अधिकार भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जायं जिनका विपरीत दशा में वे अकेले ही उपभोग करती। उस हालत में मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकता कि सर सुलतान अहमद की इस राय का जिसकी कि मी गोविन्द वोल्स ने भी ताईद की है समर्थन करूं कि अधिक-से अधिक हम जो कर सकते हैं वह यही है कि हम रियासतों से विनय करें और उन्हें अपनी निजी कठिनाइयां बतायें किन्तु इसके साथ ही मैं यह ख्याल करता हूं कि हमें उनकी खास कठिनाइयों को भी समझ लेना चाहिए।

इसलिए मै इन महान नरेशो के विचार के विचारार्थ एक या दो सूचनाएं पेश करने का साहस करूंगा और यह निवेदन करूंगा जनता का जनता की ओर से निर्वाचित समाज की निम्नातिनिम्न श्रेणी का एक प्रतिनिधि होने की हैसियत से। मैं उनसे विनती करूंगा कि वे जो कोई भी योजना तैयार करें और समिति के सामने स्वीकृति के लिए पेश करें, उनके लिए उचित होगा कि वे उस योजना में प्रजा का भी ध्यान रक्खें। मै यह ख्याल करता हूं और जानता हूं कि उनके हृदयों में उनकी प्रजा का हित है। म जानता हूं वे उनके हितों की रक्षा का उत्साह के साथ दावा करते हैं। किन्तु यदि सब बातें ठीक हुईं तो वे 'प्रजाकीय भारत'—यदि ब्रिटिश भारत को म यह नाम दू— के साथ अधिकाधिक सम्पर्क में आयेंगे और उस भारत के निवासियों के साथ उसी तरह समान हित स्थापित करना चाहिये जिस प्रकार 'प्रजाकीय भारत' 'नरेशों के भारत' के साथ समान हित स्थापित करना चाहेगा। अन्त में कुछ भी हो दोनों भारतों में वस्तुतः कोई भी प्राकृतिक या सच्चा भेद नहीं है। यदि कोई एक जीवित शरीर को दो हिस्सों में बांट सकता हो तो आप भारत को दो हिस्सों में बांट सकते हैं। अज्ञात समय से यह एक देश की तरह रहता आया है और कोई भी कृत्रिम सीमा उसे विभाजित कर नहीं सकती। नरेशों की

अथवा में यह कहना ही पड़ेगा कि जिस समय उन्होंने साफ़ तौर से और साहस के साथ अपने प्रान्त का संघ-शासन के पक्ष में घोषित किया उस समय उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी उसी रक्त के हैं जिसके कि हम—वे भी हमारे ही भाई बन्धु हैं। वे इसके विपरीत कर ही कैसे सकते थे? हमारे-उनके बीच इसके सिवा और कोई अन्तर नहीं कि हम सामान्य व्यक्ति हैं और ईश्वर ने उन्हें विशिष्ट पुरुष नरेश बनाया है। मैं उनकी भलाई चाहता हूँ मैं उनकी सब प्रकार की वृद्धि चाहता हूँ और मैं प्रार्थना करता हूँ कि उनकी सुख-समृद्धि का उपयोग उनकी अपनी जनता उनकी अपनी प्रजा की उन्नति में हो।

मैं इसमें आगे न जाऊँगा या नहीं सकता। मैं उनसे एक प्रार्थना कर सकता हूँ। हम जानते हैं कि उनके लिए छूट है कि वे संघ-योजना में शरीक हों या न हों। यह हमारा काम है कि हम उनके संघ में आने का मार्ग सुगम कर दें उनका काम यह है कि वे खुली भुजाओं से उनका स्वागत करने का हमारा मार्ग सुगम कर दें।

मैं जानता हूँ कि 'दो और लो' की इस भावना के बिना हम संघ-शासन की किसी निश्चित योजना पर न पहुँच सकेंगे और यदि पहुँचे भी तो अन्त में झगड़ कर छिन्न-भिन्न हो जायँगे। इसलिए मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि जबतक हम हृदय से उस बात को न चाहें तबतक किसी संघ-योजना में शरीक न हों। यदि हम उसमें शरीक हों तो पूरे हृदय से हों।

दूसरे शीर्षक के विषय में मैं देखता हूँ कि अपात्रता पर ही विचार किया गया है कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी चाहिए अथवा नहीं? यद्यपि मैं जन-सत्तावादी होने का दावा करता हूँ, फिर भी निस्संकोच कह सकता हूँ कि उम्मेदवार के लिए कुछ अपात्रता (Disqualification) निर्धारित करने अथवा किसी सदस्य को अलग करने के लिए कोई अपात्रता निश्चित करने में मत-दाता के अधिकार का कोई विरोध नहीं होता। यह अपात्रता क्या होनी चाहिए, इस विषय पर मैं अभी

चर्चा नहीं करना चाहता। अभी तो मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपात्रता के विचार और सिद्धान्त का मैं पूरा समर्थन करूँगा।

मैं 'नैतिक पतन' शब्द से डरता नहीं, विपरीत इसके मैं उसे अच्छा मानता हूँ। अवश्य ही गहरे-से-गहरे विचार के बाद निर्धारित शब्दों पर कठिनाइयाँ तो होंगी ही किन्तु न्यायाधीशों का काम इन कठिनाइयों को दूर करना न होगा तो और क्या होगा? कठिनाई पड़ने पर न्यायाधीश हमारी सहायता करेंगे और 'नैतिक पतन' में किन-किन बातों का समावेश है और किन का नहीं यह वे हमें बतावेंगे। यदि संयोग से मुझ-जैसे सविनय भंग करने वाले व्यक्ति के कार्य को 'नैतिक पतन' समझा जायगा तो मैं उस निर्णय को स्वीकार कर लूँगा। मैं अपात्र अथवा अयोग्य ठहरा दिये जाने की परवा नहीं करता। कई लोगों को कठिनाइयाँ भी सहनी पड़ती हैं किन्तु इससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी ही नहीं चाहिए और यदि हो तो उसमें मतदाता के अधिकार का अपहरण होता है। यदि हम कोई कसौटी अथवा आयु की मर्यादा रखना चाहें तो मैं समझता हूँ कि हमें चारित्र्य की मर्यादा भी रखनी चाहिए।

तीसरा विषय प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का है। अप्रत्यक्ष चुनाव का जहाँ तक सिद्धान्त से मतलब है उसपर मुझे अपने साथ सहमत होते देखने के लिए, मैं चाहता हूँ कि लार्ड पील यहाँ उपस्थित होते। मैं धाराकार नहीं हूँ, केवल एक सामान्य व्यक्ति की तरह बोल रहा हूँ किन्तु 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द से मैं डरता नहीं। मैं नहीं जानता कि इसका कोई पारिभाषिक अर्थ है। यदि कोई ऐसा अर्थ हो तो मैं उससे सर्वथा अपरिचित हूँ। मैं इसका क्या अर्थ करता हूँ यह मैं स्वयं बता देना चाहता हूँ। यदि इसे ही अप्रत्यक्ष चुनाव भी कहा जाता हो तो मैं निश्चयपूर्वक इसके लिए चारों ओर घूमकर उसके पक्ष में बोलूँगा और सम्भवतः इस प्रकार के पक्ष में बहुत-सा साहित्य भी तैयार कर दूँगा। मैं बालिग मताधिकार से बंधा हुआ हूँ किसी भी

तरह ही साम्यवादियों ने उसे स्वीकार किया है। बालिग मताधिकार अनेक कारणों में से एक यह है कि वह मुझे सबकी—केवल मुसलमानों की ही नहीं अछूत अछूत ईसाई, मजदूर तथा अन्य सब वर्गों की—उचित आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए समर्थ बनाता है।

जिस व्यक्ति के पास धन है वह मत दे सकता है किन्तु जिस व्यक्ति के पास चरित्र है पर धन अथवा अक्षर-ज्ञान नहीं वह मत नहीं दे सकता अथवा जो व्यक्ति सारे दिन पसीना बहाकर ईमानदारी से काम करता है वह ग़रीब होने के अपराध के कारण मत न दे सके यह व्यवस्था ही मुझसे नहीं सही जा सकती। यह असह्य बात है और ग़रीब-से-ग़रीब ग्रामवासी के साथ रहकर और उनमें मिलकर और अछूत समझे जाने में अपना गौरव मानते हुए मैं जानता हूँ कि इन ग़रीब लोगों में स्वयं अछूतों में मानवता के सुन्दर-से-सुन्दर नमूने मिल सकते हैं। अछूत भाई का मत न मिले इसकी अपेक्षा मैं अपना मत छोड़ देना कहीं अधिक पसन्द करूँगा।

मैं अक्षर-ज्ञान के उस सिद्धान्त पर मोहित नहीं कि मत-दाता को *कम-से-कम लिखने पढ़ने और गणित का बोध होना चाहिए। मैं चाहता* हूँ कि मेरे भाइयों को लिखने पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त हो; किन्तु उसके साथ ही मैं जानता हूँ कि यदि उन्हें मत देने का अधिकारी बनने के लिए पहले लिखने पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक हो तो मुझे अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी होगी और मैं इतने समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि इनमें के करोड़ों व्यक्तियों में मत देने की शक्ति है किन्तु हम यदि इन सबको मताधिकार दें तो इन सबको मतदाताओं की सूची में दाखिल करना और व्यवस्थित निर्वाचन-मण्डल तैयार करना सर्वथा असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा।

मैं लार्ड पील की इस आशंका से सहमत हूँ कि यदि हमारे निर्वाचन मण्डल इतने बड़े हों कि हमारी उनतक पहुँच न हो सके तो उम्मेदवार

मतदाताओं की सूची तैयार करते समय जिन्हें मत देने का अधिकार है उन सबका नाम सूची में लिखने के लिए बाध्य है इसलिए किसी की मत देने की इच्छा हो अथवा न हो फिर भी वह अपना नाम सूची में आया हुआ देखता है। ऐसे ही एक दिन मैंने डर्बन (नेटाल) में अपना नाम मतदाताओं की सूची में देखा। वहाँ की व्यवस्थापिका सभा की स्थिति पर प्रभाव डालने की मेरी जरा भी इच्छा न थी और इसलिए मैंने अपना नाम मतदाताओं की सूची में शामिल करवाने का जरा भी ख्याल न किया था किन्तु किसी उम्मेदवार को जब मेरे मत या वोट की आवश्यकता हुई तब उसने मेरा ध्यान इस बात की ओर खींचा कि मेरा नाम मतदाताओं की सूची में है। उससे मुझे मालूम हुआ कि मत-दाताओं की सूची किस प्रकार तैयार की जाती है।

इसलिए हमारी योजना ऐसी हो कि जिसे मत देना हो वह मत प्राप्त कर सकता है। जिसे मत की आवश्यकता हो उसे वह प्राप्त करने की छुट्टी है और धन-सम्पत्ति तथा सबके लिए समान रूप से लागू कोई अन्य शर्त हो तो उसे स्वीकार कर लाखों पुरुष और उसी तरह स्त्रियाँ भी मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा सकती हैं। मेरा ख्याल है कि इस प्रकार की योजना मतदाताओं की सूची को व्यवस्थित मर्यादा में रख सकेगी।

इतना होने पर भी हमारे पास लाखों मनुष्य आवेंगे इसलिए गाँवों का सम्बन्ध प्रधान अथवा बड़ी व्यवस्थापिका सभा से जोड़ने के लिए कुछ-न-कुछ किये जाने की आवश्यकता रह जाती है। हमारे यहाँ बड़ी व्यवस्थापिका सभा से मिलती-जुलती महासमिति (आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी) है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं से मिलती-जुलती हमारे यहाँ प्रान्तीय समितियाँ हैं और छोटी-मोटी अन्य व्यवस्थापिका सभाएँ भी हमारे पास हैं और हमारा शासन भी है। हमारी अपनी कार्य-समिति भी है। यह बिलकुल सच है कि इसके पीछे हमारे पास संगीनों का बल नहीं है किन्तु अपने निर्णयों को आगे बढ़ाने और लोगों से

उनका पालन कराने का जो बल हमारे पास है वह उससे कहीं अधिक उत्तम एवं बढ़ा-चढ़ा है। अभी तक हमारे सामने ऐसी कठिनाइयां नहीं आई हैं जिन्हें हम हल न कर सके हों। मैं यह नहीं कह सकता कि सब अवसरों पर हम निर्णयों का पूरी-पूरी तरह से पालन करा सके हैं किन्तु हम पूरे ४७ वर्ष तक काम करते हुए आगे बढ़ते चले आये हैं और प्रतिवर्ष इस महासभा की ऊंचाई अधिक-से-अधिक बढ़ती गई है।

मैं आपको बताना चाहता हूं कि हमारी प्रान्तिक समितियों को अपने निर्वाचनों के विषय में उपनियम बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। मूल आधार अर्थात् मतदाताओं की पात्रता (Qualifications) को वे किस कुछ नहीं बदल सकतीं किन्तु अन्य सब बातें वे अपनी इच्छानुसार कर सकती हैं।

इसलिए मैं केवल एक प्रान्त का जहां ऐसा होता है उदाहरण दूंगा। वहां गांव अपनी-अपनी छोटी समितियां चुन लेते हैं। ये समितियां तालुका समिति चुनती हैं और ये तालुका-समितियां फिर जिला समिति का चुनाव करती हैं और जिला समितियां प्रान्तिक समिति का चुनाव करती हैं। प्रान्तिक समितियां अपने सदस्य बड़ी व्यवस्थापक सभा में—यदि महासमिति को मैं यह नाम दूं तो—भेजते हैं। इस प्रकार हम यह सब कर सके हैं। मैं इस बात की परवा नहीं करता कि इस योजना में हम ऐसा ही करेंगे या कुछ और किन्तु हमारे यहां • गार है इसका दिग्दर्शन मैंने अवश्य किया है। मेरा विश्वास है कि इस व यार्थी में देशी राज्यों का भी समावेश हो जाता है। यदि मैं इसमें कुलना छोड़ तो बनाये जाने पर मैं उसे दुरुस्त कर लूंगा किन्तु मैं नम्रतापूर्वक कहूंगा कि प्रजातीय भारत में ५, का कुछ अधिक गांव होंगे। हम यह ५, घटक (Units) बना दें। प्रत्येक घटक अपने-अपने प्रतिनिधि चुनकर और अगर चाहें तो इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन कराना करें अथवा मत-व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनिधि चुन देंगे। मैंने तो आपको योजना को केवल रूप-रेखा बता दी है।

आपको यदि यह पसन्द हो तो तफ़्सील की बातें पूरी की जा सकती हैं। यदि हमें बालिग मताधिकार रखना है तो मैंने जो योजना आपको बताई है उससे मिलती-जुलती किसी योजना का हमें आश्रय लेना होगा। जहां-जहां उसके अनुसार काम हुआ है मैं आपको अपना ही प्रमाण दे सकता हूं कि वहां उसके बड़े सुन्दर परिणाम निकले हैं और इन चुने चुने प्रतिनिधियों के द्वारा गरीब ग्रामीणों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में किसी तरह की कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। यह व्यवस्था बड़ी सरलता से चलती रही है और जहां लोगों ने उसे ईमानदारी से चलाया है वहां यह बड़ी तेजी से और निस्सन्देह बिना किसी उल्लेखनीय खर्च के चली है। मैं समझ ही नहीं कर सकता कि इस योजना के अनुसार उम्मीदवार को चुनाव के लिए साठ हजार या एक लाख तक खर्चा करने की सम्भावना हो। ऐसे कई उदाहरण मैं जानता हूं जिनमें चुनाव का खर्च लगभग एक लाख रुपये तक पहुंच गया था जो कि मेरे ख्याल से संसार के सबसे निर्धन देश के लिए अत्याचार था।

इस विषय पर चर्चा करते हुए मैं द्विसदन-व्यवस्थापिका सभा (Bi-Cameral Legislature) के सम्बन्ध में मेरा जैसा भी कुछ मत है वह आपके सामने रख देना चाहता हूं। यदि आपकी भावुकता को चोट न पहुंचे तो मैं कहूंगा कि इस विषय में मैं भी जोशी के साथ सहमत हूं। निश्चय ही मुझे दो व्यवस्थापिका सभाओं का मोह नहीं है, न मैंने उनको स्वीकार ही किया है। मुझे इस बात का जरा भी भय नहीं है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा स्वतन्त्र रूप से जल्दी में कानून पास कर देगी और पीछे से उसके लिए उसे पछताना पड़ेगा। प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा को बदनाम करके उसे उड़ा देना मुझे पसन्द नहीं है। मेरा ख्याल है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा अपनी सम्हाल रख सकती है और क्योंकि इस समय में संसार के सबसे गरीब देश का विचार कर रहा हूं इसलिए हम जितना कम-से-कम खर्च करें, उतना ही अच्छा है। मैं एक क्षण के लिए भी इस विचार से सहमत नहीं हो

सकता कि प्रजातीय व्यवस्थापिका सभा के ऊपर यदि कोई दूसरी बड़ी व्यवस्थापिका सभा न हुई तो वह देश को बरबाद कर देगी। मुझे ऐसा कोई भय नहीं है। इसके विपरीत मुझे यह आशंका है कि जब कभी प्रजातीय सभा और बड़ी सभा में मतभेद होगा तो दोनों में घनघोर संग्राम मच जायगा। कुछ भी हो यद्यपि मैं इस विषय में कोई निर्णायक तरीका अख्तियार नहीं करता फिर भी मेरी यह निश्चित राय है कि हम केवल एक व्यवस्थापिका सभा से काम चला सकते हैं और इससे लाभ ही होगा। यदि हम अपने मन में एक सभा से काम चला लेने के लिए विश्वास पैदा कर सकें तो हम निश्चय ही एक बहुत बड़े खर्च से बच जायँगे। मैं लार्ड पील के इस विचार से सर्वथा सहमत हूं कि पहले के उदाहरणों के सम्बन्ध में हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं एक नया उदाहरण पैदा करेंगे। हमारा देश एक महाद्वीप है। मनुष्य की किसी भी जो जीवित संस्थाओं में पूर्ण समानता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। हमारी अपनी विशेष परिस्थिति है और हमारी अपनी विशेष मनोरचना है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे उदाहरणों का विचार किये बिना ही हमें कई बातों में अपने लिए नया रास्ता निकालना पड़ेगा। इसलिए मैं समझता हूं कि यदि हम एक ही व्यवस्थापिका सभा के तरीके को आजमायश करें तो हम गलत रास्ते पर न जायेंगे। मानव-बुद्धि से जितना सम्भव हो सके उतनी पूर्ण इसे अवश्य बनाइए; किन्तु एक ही सभा से सन्तोष कीजिए। मेरे इस प्रकार के विचार होने से तीसरी और चौथी उपधारा पर मेरे लिए विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती।

अब मैं पांचवीं उपधारा—विशेष वर्गों के विशेष निर्वाचक-संघ द्वारा प्रतिनिधित्व—पर आता हूं। यहां मैं महासभा की ओर से अपने विचार प्रकट करता हूं। महासभा ने हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख समस्या को विशेष व्यवहार से हल करने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया है। इसके लिए सबल ऐतिहासिक कारण हैं। किन्तु महासभा इन सिद्धान्त

को किसी भी प्रकार का रूप न पाने से जाने के लिए तैयार नहीं है। विशेष हितों की सूची मैंने ध्यान से सुनी है। अछूतों के विषय में डा० अम्बेडकर का क्या कहना है यह मैं अभी तक अच्छी तरह समझ नहीं सका हूँ किन्तु अछूतों के हितों का प्रतिनिधित्व करने में महासभा डा० अम्बेडकर के साथ अवश्य हिस्सा लेगी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक महासभा को जितना दूसरी किसी संस्था अथवा व्यक्ति का हित प्रिय है उतना ही प्रिय उसे अछूतों का हित है। इसलिए इससे आगे किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का मैं जोरों से विरोध करूँगा। बालिग मताधिकार में मजदूर तथा ऐसे ही अन्य वर्गों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं और न जमींदारों के लिए ही निश्चित रूप से इसकी जरूरत है, इसका कारण मैं आपको बताऊँगा। जमींदारों को उनकी जायदाद से वंचित करने की महासभा की तथा कुछ संस्थाओं की जरा भी इच्छा नहीं है। वे तो चाहते हैं कि जमींदार अपने किसानों के रक्षक बनें। मैं समझता हूँ कि जमींदारों को तो इसी विचार में अपना गौरव मानना चाहिए कि उनके किसान—वे ग्रामवासी—बाहर से आने वाले दूसरे लोगों अथवा अपने में से किसी की अपेक्षा जमींदारों को अपना प्रतिनिधि चुनना पसन्द करेंगे।

इसलिए नतीजा यह होगा कि जमींदारों को अपने किसानों के साथ मिलना होगा। उनका और अपना एक समान-हित स्थापित करना होगा। इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या हो सकती है? किन्तु यदि जमींदार दो सभा हों तो दोनों में से एक में अथवा एक सभा हो तो उसमें अपने विशेष प्रतिनिधित्व की माँग पर जोर दें, तो निस्सन्देह वे हमारे बीच एक अप्रिय विवाद उत्पन्न कर देंगे। मैं आशा करता हूँ कि जमींदार अथवा ऐसे किसी अन्य वर्ग की ओर से इस प्रकार की कोई माँग न की जायगी।

अब मैं अपने अंग्रेज मित्रों की ओर आता हूँ। श्री बेंथिम बौन्थ स्वभावतः ही उनके प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। मैं उन्हें भरोसा-

पूर्वक सूचित करता था कि अभी तक वे विशेष अधिकार मांगते रहे हैं यह विदेशी सरकार जिसके मातहत थी वे सब संरक्षण वे पा चुके हैं और उदारतापूर्वक पा चुके हैं। अब यदि वे भारत की सर्वसाधारण जनता के साथ अपने हितों को मिला दें तो उन्हें किसी प्रकार का भय न होगा। श्री गेविन जोन्स ने कहा है कि उन्हें सब खतरा है और इसके लिए एक पत्र पढ़कर भी सुनाया है। मैंने वह पत्र नहीं पढ़ा है। सम्भव है कि कुछ भारतीय यह कहें—'हां अवश्य यदि यूरोपियन अपना हमारे द्वारा चुन जाना चाहेंगे तो हम उन्हें न चुनेंगे।' लेकिन मैं श्री गेविन जोन्स को अपने साथ लेकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमूंगा और उन्हें बताऊंगा कि यदि वे हमारे साथी बनकर रहना चाहेंगे तो एक भारतीय की अपेक्षा उनको पहले चुना जायगा। चार्ली एण्ड्रूज का उदाहरण लीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वे भारत के किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र की ओर से बिना किसी दिक्कत के चुन लिए जायंगे। उनसे पूछिए कि एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश ने उन्हें खुली भुजाओं से स्वीकार कर लिया है या नहीं? मैं ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूं। मैं अपनों से प्रार्थना करता हूं कि वे एक बार भारतीय जनता के सद्भाव पर जीवित रह कर देखें और अपने अधिकारों के लिए विशेष अधिकार अथवा संरक्षण की मांग न करें जो कि बाहरी सहायता का एक स्पष्ट तरीका है। मैं यह चाहता हूं और इसके लिए उनसे याचिका करता हूं कि यदि वे भारत में रहें तो हमारे होकर रहें। मैं यह अवश्य महसूस करता हूं कि किसी भी योजना में जो बालिग मताधिकार स्वीकार करे किसी भी हालत में विशेष हितों की रक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। बालिग-मताधिकार जिसमें से विशेष हितों तक सबों की रक्षा अपने-आप हो जाती है।

ईसाइयों के सम्बन्ध में एक सज्जन का जो कि अब हमारे साथ नहीं रहे आभारी हूं। उन्होंने कहा था, "हम कोई खास संरक्षण नहीं चाहते।" मेरे पास किन्हीं संन्यासियों के पत्र भी हैं जिनमें वे कहते हैं कि

उन्हें खास संरक्षण की आवश्यकता नहीं। वे जो कुछ भी विशेष संरक्षण प्राप्त करेंगे वह अपनी भव्य सेवाओं के बल पर प्राप्त संरक्षण होगा।

अब मैं एक अत्यन्त नाजुक विषय अर्थात् वफ़ादारी की शपथ पर आता हूं। इस सम्बन्ध में मैं अभी कोई सम्मति न दे सकूंगा क्योंकि इस के पहले मैं यह जान लेना चाहता हूं कि इसका रूप क्या होगा। यदि वह पूर्ण स्वतन्त्रता हो और भारत को सम्पूर्ण स्वराज्य मिलता हो तो स्वभावतः ही वफ़ादारी की शपथ का एक ही रूप हो जाता है। और यदि भारत को पराधीन रहना है तो उसमें मेरे लिए स्थान नहीं है। इसलिए वफ़ादारी की शपथ के प्रश्न पर मात्र सम्मति देना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

अब अन्तिम प्रश्न लीजिए। प्रत्येक सभा में यदि सरकार द्वारा नामज़द सदस्यों की व्यवस्था हो तो वह कैसी होनी चाहिए? कांग्रेस वादियों ने जो योजना तैयार की है उसमें नामज़द सदस्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। विशेषज्ञों अथवा जिनकी सलाह मांगी जाय उनके आने की बात मैं समझ सकता हूं। वे अपनी सलाह देंगे और लौट जायंगे। उनके मत देने की आवश्यकता का मैं ज़रा भी औचित्य नहीं देखता। यदि हम विशुद्ध प्रजातन्त्रपूर्ण संस्था चाहते हों तो उसमें तो जनता के प्रतिनिधि ही मत दे सकते हैं। इसलिए जिस योजना में सरकार के नामज़द सदस्यों की गुंजाइश हो उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता। किन्तु यह बात मुझे फिर पांचवीं उपधारा पर लाती है। मान लीजिए कि मेरे दिमाग़ में यह हो—क्योंकि महासभा ने भी हमसे ऐसा ही रखा है—और हम चाहते भी हैं कि स्त्रियां चुनी जायं अंग्रेज़ चुने जायं अछूत भी अवश्य चुने जायं और ईसाई भी चुने जायं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि ये बहुत बड़े अल्पसंख्यक वर्ग हैं फिर भी अल्पसंख्यक हैं और मान लिया जाय कि निर्वाचक-संघ अपने अधिकारों का ऐसा दुरुपयोग करें कि स्त्रियों अंग्रेज़ों अछूतों अथवा ज़मींदारों को न चुनें और उनके इस कृत्य का कोई उचित कारण न हो तो मैं विधान में ऐसी धारा

रखूँगा जिससे यह निर्वाचित व्यवस्थापिका-सभा उन्हें निर्वाचित अथवा नामजद कर सके। किन्तु मैं जानता हूँ कि यह चुनाव उनका होना चाहिए जो चुने जाने चाहिए थे पर चुने न गये हों। कदाचित् मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट न हुआ हो इसलिए मैं एक उदाहरण देता हूँ हमारी एक प्रान्तीय समिति का ठीक ऐसा नियम है कि एक अमुक निश्चित संख्या में मुसलमान स्त्रियों और अछूतों का चुनाव निर्वाचक मण्डल के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है। और यदि वह ऐसा न करें तो पूर्व निर्वाचित समिति में जो स्त्रियाँ मुसलमान और अछूत उम्मेदवार होते हैं, उन्हीं में से निर्वाचन करती है; और इस प्रकार उक्त वर्ग की संख्या पूरी की जाती है। यह तरीका है, जो हम काम में ला रहे हैं। निर्वाचक मण्डल इस प्रकार दुर्व्यवहार न करें, इसके लिए यदि कोई प्रतिबन्धक नियम बनाया जाय तो मैं उसका विरोध न करूँगा इसके विपरीत उसका स्वागत करूँगा। किन्तु पहले तो मैं निर्वाचक मण्डल पर यह विश्वास रखूँगा कि वे सब वर्गों के प्रतिनिधि चुनेंगे और सम्बन्धी अथवा सजातीयता के अन्ध-भक्त न बन जायगे। मैं आपको विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि महासभा की मनोवृत्ति जाति-पाँति के भेदभाव तथा ऊँच-नीच की नीति के सर्वथा विपरीत है। महासभा सम्पूर्ण समानता के भावों का पोषण कर रही है।

लार्ड सभापति महाशय मैंने इतना समय लिया इसके लिए मुझे खेद है, और मुझे आपने इतना अवकाश देने की उदारता दिखाई, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।*

---

*इस भाषण पर यह बहस हुई—

सर अकबर हैदरी—मैं एक सवाल पूछूँ ? जो ५, गांव का निर्वाचन-क्षेत्र है क्या वे पहले प्रान्तिक कौंसिल के लिए अपने प्रतिनिधि चुनेंगे और तब प्रान्तिक कौंसिलें संघीय धारासभाओं के प्रतिनिधि चुनेंगी अथवा प्रान्तिक कौंसिलों और संघीय धारासभा के निर्वाचन-क्षेत्र पृथक-पृथक रहेंगे ?

२

दो कसौटियां

जबसे मैं लन्दन आया हूँ, मुझे सर्वत्र मित्रता और सच्चे प्रेम ही का अनुभव हुआ है। नित्यप्रति मेरे नये-नये मित्र बनते जा रहे हैं, किन्तु आपने (श्री ए. फेनर ब्रोकवे ने) मुझे यह याद दिलाई है कि आवश्यकता के समय आप हमारे मित्र रहे हैं और वास्तव में आवश्यकता के समय जो काम आवे वही सच्चे मित्र कहाते हैं। जब ऐसा प्रतीत होता था कि भारत का या यों कहिए महासभावादियों का इस पृथिवी पर रहने वाले प्रायः सभी ने साथ छोड़ दिया है, उस समय आपने दृढ़तापूर्वक महासभा का साथ दिया और महासभा की जो स्थिति थी उसे अपनी स्थिति समझा। आपने महासभा के कार्यक्रम में अपना विश्वास को आज फिर से ताजा किया है और ऐसा करके आपने मेरे बोझ को हलका किया है।

गांधीजी—महाशय सर अकबर हैदरी के जवाब में प्रथम तो मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि मेरी योजना के सामान्य सिद्धान्त हम स्वीकार कर लें तो वस्तुतः ये सब बातें बिना किसी भी कठिनाई के तय हो सकती हैं। लेकिन सर अकबर हैदरी ने जो खास प्रश्न पूछा है उसके जवाब में मैं कहूंगा कि जिस योजना का मैं प्रस्ताव कर रहा हूं उसमें गांवों के द्वारा निर्वाचकों अथवा मतदाताओं का चुनाव होगा—कुल गांव एक आदमी को चुनेगा और कहेगा कि "तुम हमारे लिए अथवा हमारी तरफ से मत दोगे।" और वह आदमी प्रान्तिक कौंसिलों या मध्यवर्ती धारासभा के चुनाव के लिए उनका एजेंट हो जायेगा।

सर अकबर हैदरी—तब वह आदमी दुहेरी स्थिति में रहेगा प्रान्तिक

महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से जो सन्देश देश के लिए मैं यहां भेजा गया हूं वह सन्देश आपको सुनाना ठीक वैसी ही बात होगी जैसा कि काशी को गंगाजल ले जाना। महासभा के दावे के औचित्य अथवा अनौचित्य के बारे में आप सब जानते हैं और मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके हाथों में महासभा का दावा बिलकुल सुरक्षित है। आपने आज के अपने बर्ताव से महासभा के जरिये भारतीय गांवों के करोड़ों मूक और अधपेट रहनेवाले प्राणियों के साथ की अपनी मित्रता पर मुहर लगा दी है।

यह कल्पना की जाती है कि आप एक दावत में शरीक हुए हैं। मैं अंग्रेजी दावतों से जाने से नहीं पर देखने से ही परिचित हूं और जब मैंने इस मेज को देखा तो मैंने अनुभव किया कि आपने दावत के नाम पर कितनी कुर्बानी की है। मुझे आशा है कि काम का समय आने तक त्याग की यह भावना कायम रहेगी जब आप अपने लिए कुछ बढ़िया-बढ़िया चीजें काम में ला सकेंगे जो अंग्रेजी होटलों और विश्राम-गृहों में आपको मिला करती हैं। किन्तु इस प्रकट विनोद के

कौंसिलों के और साथ ही केन्द्रीय धारासभा के चुनाव में भी वह मत देगा ?

गांधीजी—वह ऐसा कर सकेगा; लेकिन आज तो मैं सिर्फ केन्द्रीय धारासभा के चुनाव की बाबत कह रहा था।

सर अकबर हैदरी—इस प्रकार निर्वाचित प्रान्तिक कौंसिल के द्वारा केन्द्रीय धारासभा के चुनाव के किसी भी विचार को क्या आप स्वीकार न करेंगे ?

गांधीजी—मैं उसे अस्वीकार नहीं करता लेकिन वही स्वयं मुझे पसन्द नहीं आता। अगर 'अप्रत्यक्ष चुनाव' का यही विशिष्ट अर्थ हो तो मैं उसे स्वीकार नहीं करता। मैं तो 'अप्रत्यक्ष चुनाव' का शब्द व्यवहार अस्पष्ट रूप में कर रहा हूं। अगर इसका पारिभाषिक (Technical) अर्थ ऐसा हो तो मैं उसे नहीं मानता।

पीछे गम्भीरता भी विद्यमान है। मुझे मालूम है कि आपने कुछ त्याग किया है। आपमें कुछ लोगों ने भारत की स्वाधीनता के कार्य का प्रतिपादन करने के लिए 'स्वाधीनता' शब्द का पूर्णतया संकुचित अर्थ समझते हुए बहुत कुछ त्याग किया है किन्तु सम्भव है यदि आप भारत का पक्ष प्रतिपादन करते रहें तो आपको और भी अधिक कुर्बानियां करनी पड़ें। जब मैंने यहां आना स्वीकार किया तो मेरे मन में किसी प्रकार का भ्रम न था। जिस दिन मैंने लन्दन में प्रवेश किया उस दिन आपने मेरे मुंह से सुना होगा कि मेरे लन्दन आने के प्रधानतम कारणों में से एक कारण यह था कि मैंने एक सम्माननीय समझौते के साथ जो वादा कर लिया था उसे मुझे पूरा करना था। उस वादे के अनुसार ही जिन अंग्रेज स्त्री-पुरुषों से मैं मिलता हूं उन्हें अपनी शक्ति-भर यह बतलाने की कोशिश करता हूं कि जिस बात को महासभा चाहती है, उसे पाने के लिए भारत उत्सुक है। साथ ही मैं यह बताने की भी कोशिश कर रहा हूं कि महासभा का क्या विचार है और मैं महासभा के आज्ञापत्र में वर्णित प्रत्येक बात को मान करके महासभा के सम्मान की भारतवर्ष के सम्मान की रक्षा करने के लिए यहां आया हूं। महासभा के बारे में सिवाय उस हद तक जिसकी आज्ञापत्र में अनुमति दी गई है कुछ भी कमी करने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं यह अनुभव करता हूं कि मेरा काम कठिन है, करीब-करीब मनुष्य की शक्ति के बाहर का है। भारतवर्ष की मौजूदा स्थिति के विषय में यहां कितना अधिक अज्ञान फैला हुआ है। यहां के सच्चे इतिहास के सम्बन्ध में भी बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ है।

जब मैं यहां आनेवाला था तो मुझे शान्तिधर्म के उपासक (Quaker) एक नौजवान मित्र ने याद दिलाई थी कि मेरा यहां आना निष्फल होगा क्योंकि यहां आप लोगों को बचपन से वास्तविक इतिहास नहीं बल्कि झूठा इतिहास सिखाया गया है। ज्यों-ज्यों मैं अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में आता हूं, उस मित्र द्वारा कहे गये तथ्य

को मूर्तिमान रूप में देखता हूं। उनके लिए यह समझना महा कठिन प्रायः असम्भव-सा है कि कम-से-कम भारतवासी तो यही मानते हैं कि भारत में अंग्रेजी शासन का कुल परिणाम राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित होने की अपेक्षा हानिकर ही साबित हुआ है। अंग्रेजों के सम्पर्क से होनेवाली भारत की भलाइयों की ओर निर्देश करना फिजूल है। अधिक महत्व की बात तो यह है कि हानि-लाभ दोनों को विचार कर यह मालूम किया जाय कि भारत को क्या-क्या भुगतना पड़ा है।

मैंने दो अचूक कसौटियां निश्चित की हैं। क्या यह सही है या नहीं कि आज भारत दुनिया भर में सबसे गरीब देश है और उसमें छः महीने लाखों आदमी बेकार रहते हैं? इसी तरह क्या यह सही है या नहीं कि भारत को शस्त्रहीन देश बना दिया गया है? अनिवार्य निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही नहीं बल्कि ऐसी अनेक सुविधाओं से वंचित रखकर जिनका एक स्वतन्त्र देश के नागरिक सदा उपयोग कर सकते हैं?

यदि जांच करने पर आपको पता चले कि इन दोनों परीक्षाओं में इंग्लैंड असफल हुआ है—मैं यह नहीं कहता कि बिलकुल ही असफल हुआ है बल्कि एक बड़ी हद तक असफल हुआ है—तो क्या अबतक यह वक्त नहीं आया है कि इंग्लैंड अपनी नीति बदले?

जैसा कि एक मित्र ने कहा है और जैसा कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने हजारों ही सभा-मंचों पर से बार-बार कहा है "स्वतन्त्रता और स्वाधीनता भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है। मेरे लिए यह सिद्ध करना आवश्यक नहीं है कि ब्रिटिश-शासन असल में ब्रिटिश कुशासन ही साबित हुआ है। मेरे लिए इतना कह देना ही काफी है कि चाहे कुशासन हो चाहे सुशासन भारत अवश्य स्वाधीनता प्राप्त करने का अधिकारी है। भारत के करोड़ों बनवासी की ओर से इसकी मांग की गई है।

जवाब में यह कहना कोई जवाब नहीं है कि भारत में कुछ ऐसे भी

लोग हैं जो 'स्वाधीनता' और 'स्वतंत्रता' शब्दों तक से डरते हैं। इनमें से मैं महसूस करता हूं कि कुछ ऐसे हैं जो यदि भारत से तथाकथित 'ब्रिटिश-नागपाश' हटा लिया जाय तो भी भारत की स्वाधीनता के बारे में बात करने से डरेंगे। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि भुखापीड़ित लाखों भारतीयों और राजनीति समझनेवाले लोगों को ऐसा कोई भय नहीं है और वे स्वतंत्रता की कीमत चुकाने को तैयार हैं। किन्तु जबतक महासभा अपने वर्तमान कार्यकर्ताओं को नहीं बदलती और अपनी मौजूदा नीति में उसकी श्रद्धा है तबतक उसकी कुछ सुनिश्चित मर्यादाएं हैं। यदि दूसरों की जानें लेकर शासकों का खून बहाकर भारत की आजादी प्राप्त की जाती हो तो हम आजादी नहीं चाहते। किन्तु उस आजादी की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को हमें अगर कुर्बानी करने की आवश्यकता हुई तो आप देखेंगे कि हम भारत में अपने खून की गंगा बहा देने में भी संकोच न करेंगे—उस स्वाधीनता के लिए जो हमें अबतक नहीं मिली है, हम यह सब करने को तैयार हैं। जैसा कि आपने मुझे याद दिलाया मैं यह जानता हूं कि मैं आपके बीच में अजनबी आदमी नहीं हूं, बल्कि आपका एक सहयोगी हूं। मैं जानता हूं कि आपकी ओर से मुझे यह पक्का विश्वास है कि जहां तक आपका और उनका जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं सम्बन्ध है आप हमारा साथ देंगे और भारतवर्ष को एक बार फिर यह बता देंगे कि आप आवश्यकता के समय काम आनेवाले मित्र हैं और इसलिए सच्चे मित्र हैं।

आपने जो मेरा बड़ा भारी स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूं। मैं यह जानता हूं कि यह मेरा सम्मान नहीं है, आपने यह सम्मान उन सिद्धान्तों के प्रति प्रकट किया है, जो मैं आशा करता हूं मुझे और आप दोनों को ही प्रिय हैं। सम्भव है वे मुझ-से भी आपको अधिक प्रिय हों। मुझे आशा है कि आपकी शुभकामनाओं और आपके सहयोग के बल पर मैं उन सिद्धान्तों से कभी विमुख न होऊंगा जिनकी मैं आज घोषणा कर रहा हूं।

४

अल्पसंख्यक जातियां

प्रधान मंत्री और मित्रो बड़े खेद और उससे भी अधिक आत्म-ग्लानि के साथ मैं विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से आपसी बातचीत द्वारा साम्प्रदायिक प्रश्न का एक सर्वमान्य निपटारा करने में सर्वथा असफल होने की घोषणा करता हूँ। मैं आपसे और अन्य सहयोगियों से एक सप्ताह के बहुमूल्य समय को नष्ट करने के लिए क्षमा मांगता हूँ। मुझे सन्तोष इसी बात में है कि जब मैंने बातचीत का भार अपने ऊपर लिया था तब मैं जानता था कि इसमें सफलता की अधिक आशा नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझता कि इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न मैंने बाकी रखा हो।

परन्तु यह कहना कि बातचीत बिलकुल असफल रही—जो कि हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है—सम्पूर्ण सत्य नहीं है। असफलता के कारण तो इस भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के संगठन में अन्तर्हित हैं। हममें से प्रायः सभी उन दलों या मंडलों के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं, जिनका प्रतिनिधि हमको समझा जाता है। हम सब यहां सरकार द्वारा नामज़द हो कर आये हैं। इसके अतिरिक्त यहां वे सज्जन भी नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति इस प्रश्न के निपटारे के लिए नितान्त आवश्यक है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कह दूं कि अल्पसंख्यक समिति के अधिवेशन के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। इसमें वास्तविकता का अभाव इस कारण है कि अभी हम यह भी नहीं जानते कि हमें क्या मिलने वाला है। यदि हमको निश्चित रूप से मालूम हो जाता कि जो हम चाहते हैं वह हमें मिलने वाला है तो हम ऐसी निकृष्ट खींचतान में उसे ठुकराने के पहले पचास बार आगा-पीछा सोचते बैना

कि हम तब करेंगे जब हमें यह कह दिया जाय कि उसका मिलना वर्तमान प्रतिनिधियों की साम्प्रदायिक समस्या को सर्वमान्य रूप से सुलझाने की योग्यता पर निर्भर है। साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा तो स्वराज्य-विधान की रचना के बाद ही हो सकता है, पहले नहीं क्योंकि इस प्रश्न पर उत्पन्न हुआ हमारा मतभेद हमारी गुलामी के कारण अत्यन्त जटिल हो गया है, चाहे उसके कारण उत्पन्न न भी हुआ हो। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हमारा साम्प्रदायिक मतभेद-रूपी बर्फ का पहाड़ स्वतन्त्रतारूपी सूर्य के ताप से पिघल जायगा।

इसलिए मैं यह प्रस्ताव करने का साहस करता हूँ कि अल्पसंख्यक समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाय और विधान की मौलिक बातें जितनी जल्दी हो सकें उतनी जल्दी तय कर ली जायें। इसी बीच में साम्प्रदायिक समस्या को उचित रूप से हल करने के लिए खानगी प्रयत्न जारी रहेगा और जारी रहना चाहिए। केवल इस बात का ध्यान रहे कि वह विधान-रचना के कार्य में बाधक न हो जाय। अतः इस प्रश्न से हटा कर हमें अपना ध्यान विधान-रचना के मुख्य मार्ग पर केन्द्रीभूत करना चाहिए।

मैं समिति को यह भी बतला दूं कि मेरी असफलता से इस प्रश्न का सर्वमान्य निपटारा करने की आशाओं का अन्त नहीं हो गया है। मेरी असफलता का अर्थ यह भी नहीं है कि मेरी हार हो गई; क्योंकि हार जैसा शब्द तो मेरे शब्दकोष में ही नहीं है। असफलता स्वीकार करने में मेरा तात्पर्य केवल यही है कि जिस विशेष प्रयत्न के लिए मैंने एक सप्ताह का अवकाश मांगा और जो आपने उदारतापूर्वक मुझे दिया उसमें मैं असफल रहा।

इस असफलता को मैं सफलता की सीढ़ी बनाने का प्रयास करूंगा और दोनों से भी ऐसा ही करने के लिए अनुरोध करूंगा। परन्तु यदि गोलमेज-परिषद् की समाप्ति तक भी निपटारे के हमारे सारे प्रयत्न असफल रहे तो मैं भावी विधान में एक ऐसी धारा जोड़ने की तजवीज

पैग करूँगा जिससे तमाम मार्गों की जांच करके अनिश्चित बातों पर अपना अन्तिम फैसला देने वाली एक क़ानूनी पंचायत की नियुक्ति हो जाय।

समिति को यह भी नहीं समझना चाहिए कि खानगी बातचीत के लिए दिया गया समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ है। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि बहुत से मित्र जो प्रतिनिधि नहीं हैं इस प्रश्न में दिलचस्पी ले रहे हैं। इन मित्रों में सर जियोफ़ कॉरबेट का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने पंजाब के पुनर्विभाजन की योजना प्रस्तुत की है जो मेरे विचार में अध्ययन करने योग्य है हालांकि वह सबको मान्य नहीं है। मैंने सर जियोफ़्रे से प्रार्थना की है कि वे अपनी योजना को विस्तारपूर्वक सब प्रतिनिधियों के सामने रखें। हमारे सिक्ख प्रतिनिधियों ने भी एक योजना बनाई है जो विचार करने योग्य है। सर हूबर्ट कार ने भी कल रात को एक ऐसी सुगम योजना का निर्माण किया है, जिसके अनुसार पंजाब में दो धारासभाएं हों—छोटी मुसलमानों की मांगों को सन्तुष्ट करने के लिए और बड़ी जिससे सिक्खों की मांगें भी सन्तुष्ट किया जा सके। यद्यपि मैं द्विसदन-धारासभा प्रणाली से सहमत नहीं हूँ परन्तु सर हूबर्ट की योजना ने मुझे काफ़ी आकर्षित किया है। मैं इनसे भी प्रार्थना करूंगा कि वे उसको वैसे ही उत्साह के साथ बनाते रहें जैसे उत्साह के साथ उन्होंने हमारी खानगी बातचीत में योग दिया है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

अन्त में मैं महासभा के विचार आपके सामने स्पष्टतया रख देना आवश्यक समझता हूँ क्योंकि मेरा इन मन्त्रणाओं में भाग लेने का एक मात्र कारण यही है कि मैं उसका प्रतिनिधि हूँ। यद्यपि लोगों को खास कर इंग्लैंड में ऐसा प्रतीत न होता हो परन्तु महासभा सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि होने का दावा करती है और निश्चय ही वह ऐसी मूक जनता की प्रतिनिधि है जिसमें अगणित अछूत की शामिल होने की

अपेक्षा बचाने हुए अधिक है—और उनसे भी अधिक इस्लाम तथा उपेक्षित अवनत जातियां भी शामिल हैं।

महासभा की निश्चित नीति संक्षेप में यह है। मैं महासभा का प्रस्ताव आपको पढ़कर सुनाता हूँ।

महासभा ने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावों को हटाने में प्रयत्नशील रही है। लाहौर-महासभा में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता का सर्वोच्च परिचायक है।

"चूंकि नेहरू-रिपोर्ट रद्द हो चुकी है कौमी सवालों के बारे में महासभा की नीति की घोषणा करना अनावश्यक है क्योंकि महासभा का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में कौमी सवालों का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूंकि खास कर सिक्खों ने और साधारणतया मुसलमानों तथा दूसरी अल्पसंख्यक कौमों ने नेहरू-रिपोर्ट में प्रस्तावित कौमी सवालों के हल के प्रति असन्तोष प्रगट किया है यह महासभा सिक्खों मुसलमानों और दूसरी अल्पसंख्यक कौमों को विश्वास दिलाती है कि इस सवाल का कोई भी ऐसा हल भावी शासन-विधान के लिए महासभा को तबतक मंजूर न होगा जबतक कि उसके सम्बन्धित दलों को पूरा सन्तोष न होता हो।

"इसी कारण कौमी सवाल या कौमी हल पैदा करने की जिम्मेदारी से महासभा बरी हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक अवसर पर यह अनुभव किया गया कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए जो देखने में कौमी होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर उन सब कौमों को मंजूर हो जिनका इससे सम्बन्ध है। इसलिए पूरी-पूरी और निर्बाध बहस के बाद कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

१ (अ) विधान की मौलिक अधिकार से सम्बन्धित धारा में उन-

उन क़ौमों के लिए यह आश्वासन भी शामिल हो कि उनकी संस्कृति भाषा धर्मग्रन्थ शिक्षा पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा धार्मिक इनाम या जागीर वग़ैरा की रक्षा की जायगी।

(ब) विधान में ख़ास शर्तें शामिल करके उनके द्वारा व्यक्तिगत क़ानूनों की रक्षा की जायगी।

(स) विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक और दूसरे हक़ों की रक्षा करना संघ-शासन का दायित्व होगा और यह काम उनके अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अन्दर होगा।

२ तमाम बालिग स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—कराची-महासभा के प्रस्ताव द्वारा कार्यसमिति बालिग मताधिकार के लिए बंध चुकी है अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को स्वीकार नहीं कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो गलतफ़हमी फैली हुई है उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है, किसी भी हालत में मताधिकार एक समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक क़ौम की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पड़े।

३ (अ) हिन्दुस्तान के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार संयुक्त निर्वाचन होगा।

(ब) सिन्ध के हिन्दुओं आसाम के मुसलमानों और सरहदी सूबे तथा पंजाब के सिक्खों और किसी भी प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के लिए, जहां उनकी संख्या आबादी का फ़ी सैकड़ा २५ से कम है, संघीय और प्रान्तीय धारासभाओं में आबादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे और उन्हें अधिक स्थानों के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार होगा।

"४ निष्पक्ष लोकसेवा कमीशनों द्वारा नियुक्तियां की जायँगी जो कमीशन सेवकों की कम-से-कम योग्यता निश्चित करेंगे और लोक-सेवा की कार्यक्षमता का तथा देश की सार्वजनिक नौकरियों में तमाम क़ौमों

यों समान अवसर और पर्याप्त भाग देने के सिद्धान्त का पूरा ख्याल रखेंगे ।

५. संघीय और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के निर्माण में अल्पसंख्यक जातियों के हित प्रचलित रूढ़ि के अनुसार मान्य होंगे ।

६. सरहदी सूबे और बलूचिस्तान में उसी प्रकार का शासन और व्यवस्था होगी जैसी अन्य प्रान्तों में हो ।

७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जाय बशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक प्रान्त का आर्थिक भार वहन करने को तैयार हों ।

८. देश का भावी शासन-विधान संघीय होगा । शेष अधिकार संघीय इकाइयों (*Federating Units*) के हिस्से रहेंगे बशर्ते कि अधिक परीक्षा करने पर यह हिन्दुस्तान के अधिक-से-अधिक हित के प्रतिकूल सिद्ध न हो ।

"कार्यसमिति ने उक्त योजना को विशुद्ध सम्प्रदायवाद और विशुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है । इसलिए जहां एक ओर कार्यसमिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा वहां दूसरी ओर अतिवादी लोगों को जो इसे कबूल नहीं कर सकते यह विश्वास दिलाती है कि समिति सहर्ष दूसरी किसी भी ऐसी योजना को बिना किसी हिचक के स्वीकार करेगी जैसी कि वह लाहौर वाले प्रस्ताव में बंधी हुई है जो तमाम सम्बन्धित दलों को स्वीकृत होगी ।"

यह महासभा का प्रस्ताव है ।

अब यदि राष्ट्रीय निपटारा असम्भव हो और महासभा की योजना अस्वीकृत हो तो मुझे इस बात की स्वतन्त्रता है कि मैं ऐसी अन्य न्यायोचित योजना से सहमत हो जाऊँ जो सब जातियों को मान्य हो । इस सम्बन्ध में महासभा की नीति अधिक-से-अधिक समझौतावादी है; और कम-से-कम जब वह सहमति नहीं कर सकेगी वहां वह ऐसे भी

जानता हूँ कि महासभा की संघ-न्यायालय के प्रश्न पर एक निश्चित नीति है जो मुझे भय है कि यहाँ अनेक प्रतिनिधियों को अप्रिय मालूम होगी। कुछ भी हो वह एक जिम्मेदार संस्था की नीति है इसलिए मेरे विचार में यह आवश्यक है कि मैं उसे आपके सामने रख दूँ।

मैं देखता हूँ कि इन वादविवादों का आधार यदि पूर्ण अविश्वास नहीं तो बहुत कुछ हमारा स्वयं अपने ही में यह अविश्वास है कि राष्ट्रीय सरकार अपनी कार्रवाही निष्पक्ष रूप से नहीं कर सकेगी। साम्प्रदायिक उलझन भी इसे प्रभावित कर रही है। दूसरी ओर महासभा अपनी नीति का आधार श्रद्धा तथा इस विश्वास को मानती है कि जब हमें अधिकार मिलेंगे तब हमें अपनी जिम्मेदारियों का भी ज्ञान हो जायगा और साम्प्रदायिक मतभेद अपने आप मिट जायगा। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो भी महासभा बड़े-से-बड़ा खतरा उठा लेगी क्योंकि ऐसे खतरे उठाये बिना हम वास्तविक उत्तरदायित्व को सम्भालने के योग्य न हो सकेंगे। जबतक हमारे दिमाग में यह भाव बना रहेगा कि हमें लड़ाई के लिए तथा नाजुक परिस्थिति में अपना काम चलाने के लिए किसी बाहरी शक्ति के सहारे रहना है तबतक मेरी राय में हमपर कोई जिम्मेदारी नहीं है।

यह बात भी उलझन में डालने वाली है कि हम बिना यह जाने कि हमारा ध्येय क्या है इस विषय पर बहस करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि फौज स्वराज्य सरकार के मातहत नहीं रहे तो मैं एक राय दूँगा परन्तु यदि वे हमारे ही अधिकार में रहे तो मेरी राय दूसरी होगी। मैं इस आधार पर चल रहा हूँ कि यदि हमें वास्तविक जिम्मेदारी मिलने वाली है तो सीमा पर हमारा अर्थात् सच पूछिए तो राष्ट्रीय अधिकार रहेगा। इस सम्बन्ध में जो कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं, उनमें उनके साथ मेरी तो पूरी सहानुभूति है। सबसे ऊँची अदालत का फैसला बड़ी अच्छी बात है परन्तु यदि उस अदालत की आज्ञाएँ स्वयं हमारी कचहरी से बाहर कोई असर न रखती हों तो ऐसी अदालत

र सारा राज्य और सारा संसार हिलेगा। फिर उस आज्ञा का क्या होगा ? श्री जिन्ना ने जो कहा वह मेरी समझ में आ गया कि इस कार्य के लिए सैनिक शक्ति होगी परन्तु उस हालत में आज्ञा का पालन कराने वाला तो सम्राट् (Crown) होगा। तब मैं कहूँगा कि हाइकोर्ट अथवा संघ-न्यायालय सम्राट् के ही अधीन रखें। मेरे विचार से यदि हमें जिम्मेदार बनना है तो सर्वोच्च न्यायालय को स्वराज्य-सरकार के ही मातहत रखना पड़ेगा और उसकी आज्ञाओं को अमल में लाने का काम भी उसे ही—स्वराज्य-सरकार को—ठीक करना पड़ेगा। डा० अम्बेडकर को जो भय है उसमें मैं तो नहीं डरता हूँ परन्तु मेरी समझ में उनकी आपत्ति अवश्य कुछ तथ्य रखती है क्योंकि जो अदालत न्याय करे उसे यह भी भरोसा होना चाहिए कि जिन पर उसके फैसलों का असर पड़ता है वे उनको मानेंगे। इसलिए मैं राय दूँगा कि न्यायाधीशों को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे फैसलों के सम्बन्ध की बातों को कार्यरूप में लाने के लिए नियम भी बना सकें। जरूर ही उनका पालन करवाना अदालत के हाथ में नहीं रहेगा बल्कि कार्यकारिणी-विभाग के हाथों में रहेगा परन्तु कार्यकारिणी-विभाग को इस अदालत के बनाये हुए नियमों के अनुसार ही कार्य करना होगा।

हम यह कल्पना करने लगे हैं कि यह विधान इस अदालत की रचना के सम्बन्ध की छोटी-से-छोटी बातें तक हमारे सामने रख देगा। मैं विनयपूर्वक इस विचार से अपना पूर्ण मतभेद जाहिर करता हूँ। मेरे विचार में यह विधान हमें संघ-न्यायालय का ढाँचा बना देगा और उसका अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर देगा परन्तु बाकी तमाम बातें संघ-सरकार के ऊपर छोड़ दी जायगी कि वह उनको पूरा कर ले। मैं इस बात को कभी खयाल में नहीं ला सकता कि यह विधान इन बातों को भी तय कर देगा कि न्यायाधीशों को कितने साल नौकरी करना है अथवा उनको ७ वर्ष की अथवा १२ अथवा ६ अथवा ६४ वर्ष की अवस्था पर इस्तीफा देना या रिटायर होना है मेरी राय में तो

ये बातें संघ-शासन ही निश्चित करेगा। हम प्रत्येक कानून के शरीर में सम्राट् (Crown) शब्द प्रायः ही पाते हैं। मैं यह मानता हूं कि महासभा के विचार से सम्राट् का कोई सवाल ही नहीं है। भारतवर्ष को तो पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करना है और यदि वह पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करने लगे तो जो कोई भी सर्वोच्च सत्ता होगी वही न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा आज जो सम्राट् के अधिकार की बातें हैं उन सबकी जिम्मेवार होगी।

महासभा का यह मौलिक सिद्धान्त है कि विधान का रूप चाहे जैसा हो भारत में हमारी अपनी प्रीवी-कौंसिल होगी। प्रीवी-कौंसिल वास्तव में सबसे अधिक महत्त्व की बातों में निर्धन लोगों की रक्षा तभी कर सकेगी जब उसके फाटक शीघ्रातिशीघ्र गरीबों के लिए भी खुले रहेंगे। और मेरे विचार में यदि यहाँ की—इंग्लैण्ड की—प्रीवी-कौंसिल महत्त्वपूर्ण विषयों में हमारी किस्मत का फैसला करने वाली हो तो ऐसा होना असम्भव है। इस सम्बन्ध में भी मैं अपने यहां के न्यायाधीशों की बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सर्वथा निष्पक्ष फ़ैसला देने की योग्यता में पूर्ण विश्वास रखने की सलाह दूंगा। मैं जानता हूं कि हम बड़ी जोखिम उठा रहे हैं। यहां की प्रीवी-कौंसिल एक प्राचीन संस्था है जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा तथा बड़ा मान है परन्तु इस प्रीवी-कौंसिल के प्रति अपने आदर को स्वीकार करते हुए भी मैं कभी यह विश्वास नहीं कर सकता कि हम अपनी निजी ऐसी प्रीवी-कौंसिल न बना सकेंगे जिसके गौरव को सारा संसार स्वीकार करे। इंग्लैण्ड को बड़ी पुरानी संस्थाओं का अभिमान हो सकता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भी उन संस्थाओं में बंधे रहें। यदि हमें इंग्लैण्ड से कुछ सीखना है तो यही कि हम स्वयं भी ऐसी संस्थाएं स्थापित कर सकें वरना जिस राष्ट्र के हम प्रतिनिधि हैं उसकी उन्नति की कोई आशा नहीं है। इसलिए मैं आप सबसे प्रार्थना करूंगा कि इस समय हम अपने में पूर्ण विश्वास रखें। हमारा प्रारंभ भले

ही छोटा हो परन्तु यदि हमारे हृदयों में सचाई और ईमानदारी के साथ फ़ैसला देने की शक्ति है तो फिर कोई परवाह नहीं यदि हमारे देश में इंग्लैण्ड के न्यायाधीशों-जैसी न्याय-परम्परा—जिसका उनको सचमुच में अभिमान है—न हो।

इस प्रकार मेरी राय में इस संघ-न्यायालय को अधिक-से-अधिक अधिकार होने चाहिएं और वह केवल उन्हीं मामलों का फ़ैसला न करे, जिनका संघ-क़ानून (Federal Laws) से सम्बन्ध है। संघ-क़ानून बनकर रहेंगे परन्तु उसको इतना अधिकार होना चाहिए कि भारत के किसी भी भाग में होने वाले मामलों पर वह फ़ैसले दे सके।

अब यह प्रश्न है कि देशी नरेशों की प्रजा की क्या स्थिति रहेगी और उनका क्या होगा? देशी नरेश जो कुछ कहें उसको ध्यान में रखते हुए मैं बड़े सम्मान तथा बड़ी हिचकिचाहट के साथ सलाह दूंगा कि यदि इस कान्फ्रेंस का कुछ फल निकले तो कोई बात ऐसी होनी चाहिए, जो सारे भारत के लिए तथा सारे भारतवासियों के लिए एक-सी हो फिर चाहे वे रियासतों के रहने वाले हों या भारत के अन्य भागों के। यदि हम सबमें कोई समान बात है तो अवश्य ही सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को सबके समान अधिकारों की रक्षा करनी होगी। मैं नहीं कह सकता कि वे अधिकार क्या हो सकते हैं और क्या नहीं हो सकते। चूंकि देशी नरेश स्वयं अपनी श्रेणी के ही प्रतिनिधि बनकर नहीं आये हैं, बल्कि उन्होंने अपनी प्रजा के प्रतिनिधित्व की भी बड़ी भारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर ले रखी है इसलिए मैं विनम्र तथा हार्दिक प्रार्थना करूंगा कि उनको स्वयं ही कोई ऐसी योजना बना देनी चाहिए, जिससे उनकी प्रजा को यह अनुभव हो कि यद्यपि इस परिषद् में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है, तो भी उनके विचार इन माननीय नरेशों के ही द्वारा भली प्रकार प्रकट किये जायंगे।

जहां तक रक्षा-क़ानूनों का सवाल है आप लोग शायद हंसेंगे परन्तु महात्मा का जो एक ग़रीब राष्ट्र की प्रतिनिधि है विश्वास है कि इस

सम्बन्ध में हमारा-बल के लिहाज से एक दरिद्र राष्ट्र का—वर्तमान धनकुबेर इंग्लैण्ड से स्पर्धा करना असम्भव है। भारतवर्ष जिसकी औसत आय १ पैस प्रतिदिन है वैसी तनख्वाहों को बर्दाश्त नहीं कर सकता जो यहां दी जाती हैं। मैं समझता हूं कि यदि हमें भारत में स्वाधीनतापूर्वक राज्य करना है तो इस बात को भूल जाना पड़ेगा। जब-तक अंग्रेजी तलवार यहां मौजूद है तबतक भले ही इन दीन मनुष्यों को निचोड़ कर १   रु या ५,   रु या २   रु मासिक तनख्वाहें दी जा सकें। मैं नहीं समझता कि मेरा देश इतना गिर गया है जो करोड़ों भारतीयों के जैसा जीवन बिताते हुए भी भारत की सचाई के साथ सेवा करने वाले जन पर्याप्त संख्या में उत्पन्न न कर सके। मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि कानूनी योग्यता को ईमानदार रहने के लिए भारी कीमत देने की आवश्यकता है।

इसके मैं मिसाल में मोतीलाल नेहरू सी आर दास मनमोहन घोष बदरुद्दीन तय्यबजी इत्यादि की याद आपको दिलाता हूं जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत बिलकुल मुफ्त बांटी और अपने देश की बड़ी अच्छी तथा निःस्वार्थ सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसाय में बड़ी लम्बी-लम्बी फीस लेते थे। मैं इस तर्क को इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोष से मेरा और उनसे परिचय रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि अधिक रुपये होने की वजह से इन लोगों ने भारत की आवश्यकता पड़ने पर अपनी योग्यता उत्साहपूर्वक दी हो। उसका उनकी आराम तथा विलास से रहने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने उनको बड़े सन्तोष से दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। इस समय चाहे जो स्थिति हो मैं अब भी आपको कई ऐसे प्रसिद्ध वकील बतला सकता हूं, जो यदि राष्ट्रीय हितों के लिए आगे न बढ़े होते तो भारत के विभिन्न भागों में हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के आसन पर बैठे हुए होते। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब हम अपने कानून स्वयं बनाने लगेंगे तो हम

देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर तथा भारत के करोड़ों निवासियों की दीन अवस्था को ध्यान में रखते हुए ऐसा करेंगे ।

मैं एक बात और कह कर समाप्त करूंगा । यह ध्यान में रखते हुए चाहे जो नाम आप उसे दें महासभा के विचार से यह संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय ऐसी ऊंची अदालत का स्थान ग्रहण करेगा जिसके ऊपर भारत का कोई निवासी न जा सके । मेरी राय में उसका अधिकार-क्षेत्र भी अपरिमित होगा । संघीय बातों से जहां तक सम्बन्ध है, उसका अधिकार-क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा जितने से देशी नरेश सहमत हों । परन्तु मैं यह कयास कभी नहीं कर सकता कि हमारे यहां दो सर्वोच्च न्यायालय रहें एक तो केवल संघ-कानून की बातों के लिए और दूसरा अन्य सब बातों के लिए, जो संघ-शासन या संघ-सरकार के अन्तर्गत न आती हों ।

इस समय जैसी बातें हो रही हैं उससे मालूम होता है कि संघ-सरकार कम-से-कम विषयों से ताल्लुक रक्खेगी और अधिक महत्वपूर्ण बातें संघ-शासन से बाहर ही रहेंगी । इन संघ की बातों पर यदि सर्वोच्च न्यायालय फैसला नहीं देगा तो और कौन देगा ? इसलिए इस सर्वोच्च न्यायालय का दोहरा अधिकार होगा और यदि आवश्यकता हो तो तिहरा अधिकार होगा । जितनी अधिक शक्ति हम इस संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को देंगे उतने ही अधिक विश्वास का संचार हम संसार में तथा स्वयं अपने राष्ट्र में कर सकेंगे ।

मुझे खेद है कि मैंने परिषद् के समय की यह बहुमूल्य घड़ियां ली हैं परन्तु मैंने अनुभव किया कि संघ-न्यायालय के प्रश्न पर बोलने की अनिच्छा रखते हुए भी मैं उन विचारों को आपके सामने रख दूं जो महासभावादी वर्षों से रखते चले आये हैं और जिनको हम भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक यदि फैला सकें तो फैलाना चाहते हैं । मैं जानता हूं कि मुझे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है । आपमें सारे प्रसिद्ध वकील बैठे विराजते हैं और जहां तक इस न्यायालय

की तानाशाही तथा उसके अधिकार का सवाल है वहाँ तक शायद नरेश भी मेरे विरोधी हैं। परन्तु यदि मैं संघ-न्यायालय-सम्बन्धी महासभा के तथा अपने विचारों को जिनका हम जोरों से प्रतिपादन करते हैं, आपके सामने न रक्खूँ तो अपने कर्तव्य से गिरने का दोषी होऊँगा।

६

जनतन्त्र की हत्या

प्रधानमंत्री तथा प्रतिनिधि-बन्धुओ मैं अत्यधिक संकोच और लज्जा के साथ अल्पसंख्यक जातियों के प्रश्न की चर्चा में भाग ले रहा हूँ। कुछ अल्पसंख्यक जातियों की ओर से प्रतिनिधियों के पास भेजे हुए और आज सुबह ही मिले हुए आवेदनपत्र (*Memorandum*) को मैं उचित ध्यान और एकाग्रता से नहीं पढ़ सका हूँ। इसके पहले कि उक्त आवेदन-पत्र के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहूँ मैं अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ आपकी आज्ञा से आपकी इस समिति के सामने पेश किये गये इस विचार के साथ कि जातिगत प्रश्न को हल करने की असमर्थता के कारण विधान-रचना के कार्य की प्रगति रुक रही है और ऐसा कोई विधान बनाये जाने के पहले इस प्रश्न का हल हो जाना एक अनिवार्य शर्त है, अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। इस समिति की बैठक के प्रारम्भ में ही मैंने कह दिया था कि मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। उसके बाद अबतक मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे मेरा यह विचार और दृढ़ हो गया है, और आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि गत वर्ष इस कठिनाई के सम्बन्ध में आपने जो जोर दिया और इस वर्ष फिर उसे दुहराया उसीका यह कारण है कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी माँग को रखने का उत्तेजन

मिला। यदि उन्होंने इसके विपरीत किया होता तो वह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध होता। सबने यही सोचा कि अपनी मांगें चाहे कैसी हों उन पर पूरा-पूरा आग्रह करने का यही समय है, और मैं इस बात को फिर दुहराने का साहस करता हूँ कि मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपके इस प्रश्न पर दिये गये जोर के ही कारण इसका उद्देश्य विफल हो गया है। यह उत्त बन मिलने के कारण ही हम किसी समझौते पर न आ सके। इसलिए सर विमनलाल सीतलवाद के इस विचार के साथ मैं पूर्णत: सहमत हूँ कि यही प्रश्न कोई आधारस्तम्भ नहीं है यही प्रश्न मध्यबिन्दु नहीं है प्रत्युत मध्यबिन्दु तो है विधान-रचना।

मुझे पूरा विश्वास है कि आपने इस गोलमेज-परिषद् को तथा हम लोगों को यहां ६ मील दूर से अपना घर और कामकाज छुड़ाकर साम्प्रदायिक अथवा जातिगत प्रश्न हल करने के लिए नहीं बुलाया है बल्कि आपने हमें एकत्र किया—आपने जानबूझकर यह घोषित किया कि हम लोग यहां निमंत्रित किये गये हैं—विधान-रचना की क्रिया में भाग लेने के लिए और आपने यह भी घोषित किया है कि आपके आतिथ्य-शील देश को छोड़ने के पहले हमें इस बात का निश्चय हो जायगा कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान और प्रतिष्ठायुक्त ढांचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल 'हाउस आव कामन्स' और 'हाउस आव लार्ड्स' की सम्मति मिलना ही शेष रह गया है।

किन्तु इस समय एक सर्वथा जुदी परिस्थिति का हमें सामना करना पड़ रहा है और वह यह कि चूंकि हम किसी वास्तविक समझौते पर नहीं आ सके इसलिए विधान-रचना का कुछ काम नहीं होगा और अन्तिम उपाय की तरह विधान और उससे प्रभावित सब बातों के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार की नीति को आप घोषित कर देंगे। मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि जो परिषद् इतने होहल्ले के साथ और इतने अधिक लोगों के मन और हृदय में आशा उत्पन्न करके की गई थी उसका यह दुःखद अन्त होगा।

इस आवेदन-पत्र* पर आते हुए, सर ह्यूबर्ट कार ने मुझे जो धन्यवाद दिया है वह मैं स्वीकार करता हूँ। उनका यह कहना ठीक है कि इस बोझ को अपने कंधों पर उठाते समय मैंने जो शब्द कहे थे यदि वे न कहे होते और किसी प्रकार का समझौता करने में मैं सर्वथा असफल न हुआ होता तो वे अन्य अल्पसंख्यक जातियों के साथ मिलकर इस समिति के विचार और अन्त में सम्राट्-सरकार की स्वीकृति के लिए जो अत्यन्त सराहनीय योजना पेश कर सके हैं, वह न कर सकते।

सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियों को इससे वस्तुतः जो सन्तोष हुआ है वह मैं उनसे न छीनूँगा किन्तु मेरे विचार में उन्होंने जो कुछ किया है, वह ऐसा ही है जैसा कि मुर्दे के पास बैठना और उसकी लाश की चीरफाड़ करने का भारी पराक्रम करना।

भारत की सबसे बड़ी और प्रधान राजनैतिक संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्राट्-सरकार से उन मित्रों से जो अपने नाम के सामने दी गई छोटी-छोटी जातियों के प्रतिनिधि बनना चाहते हैं, और अवश्य ही सारे संसार से मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह देना चाहता हूँ कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह योजना उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नहीं है, प्रत्युत नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए बनाई गई है।

यदि यही इरादा हो—और सारे आवेदन-पत्र में यही इरादा व्याप्त है—तो मैं उनकी सफलता चाहता हूँ परन्तु राष्ट्रीय महासभा उससे साफ अलग हो जाती है। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे

*छोटी अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानों में परस्पर-स्वीकृत कल्पित योजना। ह्यू बर्ट कार ने अपने भाषण में, गांधीजी को उस प्रश्न के निपटारे की असफलता के लिए व्यंग्यपूर्वक धन्यवाद दिया था, क्योंकि उनके (सर ह्यू बर्ट के) मत से उनकी इस असफलता के परिणाम-स्वरूप ही अल्पसंख्यक जातियां आपस में मिल सकीं।

कि खुली हवा में उगने वाला स्वतन्त्रता और स्वराज्य का वृक्ष कभी उग न सकता हो अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा महासभा चाहे जितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि सर ह्यू बर्ट कार हमें बताते हैं कि उन्होंने जो योजना तैयार की है, वह केवल कुछ ही दिनों के लिए, अस्थाई अथवा कामचलाऊ, होने के कारण हमारे राष्ट्र-हित के लिए हानिकर न होगी प्रत्युत दस वर्ष के अन्त में हम सब एक-दूसरे से मिलते और आपस में आलिंगन करते दिखाई देंगे। मेरा राजनैतिक अनुभव इसके सर्वथा विरुद्ध बात सिखाता है। यदि इस उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का कब भी कभी वह आवे शुभ मुहूर्त में प्रारम्भ करना हो तो जैसा कि इस योजना से होता है उसकी चीरफाड़ न होनी चाहिए, जो ऐसी चीरफाड़ है, जिसे कोई राष्ट्रीय सरकार सह नहीं सकती।

पर इस योजना की चौंका देने वाली बात तो यह है और प्रधान मन्त्री महोदय ! मुझे आश्चर्य है कि स्वयं आपने भी इस बात का उल्लेख इस भांति किया है मानो यह बात निर्विवाद तथ्य है कि यह योजना ११॥ करोड़ लोगों को अथवा भारत की आबादी के लगभग ४६ प्रतिशत को मान्य है। ये अंक बहुत गलत हैं, इसका आपको चौंका-धामता प्रमाण मिल चुका है। स्त्रियों की ओर से विशेष प्रतिनिधित्व की मांग से सर्वथा असहमति प्राप्त हुए चुके हैं। और स्त्रियां भारत की आबादी का आधा हिस्सा हैं, इसलिए इस ४६ प्रतिशत में कुछ कमी हो जाती है। किन्तु इतना ही नहीं है। महासभा नगण्य संस्था हो सकती है किन्तु मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के यह दावा किया है और बिना किसी शर्म के उसे फिर दुहराता हूँ कि महासभा केवल ब्रिटिश भारत की नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत की आबादी के ८५ अथवा ९५ प्रतिशत की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

इसपर चाहे जितने प्रश्न खड़े किये जाने पर भी मैं अपने पूरे बल के साथ इस बात को दुहराता हूँ कि महासभा अपनी सेवा के अधिकार से भारत के विशाल कहे जाने वाले वर्ग की प्रतिनिधि है। यदि सरकार चुनौती देकर कहे कि भारत में लोकमत की गिनती की जाय तो मैं इस चुनौती को स्वीकार कर लूंगा और तब आप तुरन्त ही देख लेंगे कि महासभा इनकी प्रतिनिधि है या नहीं। लेकिन मैं एक कदम और आगे जाता हूँ। इस समय यदि आप भारत की जेलों के रजिस्टरों की जांच करें तो आपको मालूम होगा कि इन रजिस्टरों में महासभा मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या की प्रतिनिधि भी और है। गत वर्ष महासभा के झण्डे के नीचे हजारों मुसलमान जेल गये थे। आज भी महासभा के रजिस्टर पर कई हजार मुसलमान और इसी तरह कई हजार अछूत और कई हजार भारतीय ईसाई उसके सदस्य हैं। मैं नहीं जानता कि कोई भी ऐसी जाति है जो महासभा की सदस्य न हो। नवाब साहब छतारी के प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट करते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि जमींदार, मिलमालिक और लखपति तक उसके सदस्य हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि वे धीरे-धीरे और सावधानी से महासभा की ओर आ रहे हैं, किन्तु महासभा उनकी सेवा करने का भी प्रयत्न करती है। निसन्देह महासभा मजदूरों की भी प्रतिनिधि है ही। इसलिए यह जो कहा जाता है कि इस आवेदन-पत्र में निर्धारित सूचनाएं ११॥ करोड़ से अधिक लोगों को स्वीकृत होंगी उसे बहुत अधिक मर्यादा और सावधानी के साथ स्वीकार करना चाहिए।

एक शब्द और कह कर मैं इसे समाप्त करूंगा मुझे आशा है कि साम्प्रदायिक समस्या की जो योजना महासभा ने तैयार की है वह आपके सामने आ चुकी है और सदस्यों में वितरित कर दी गई है। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि इस सम्बन्ध में अभी जितनी योजनायें देखी हैं, उन सबमें यह अत्यधिक व्यावहारिक योजना है। किन्तु मैं इसमें भूल भी कर सकता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस मेज के सामने बैठे

हुए अपनी-अपनी जाति के प्रतिनिधियों को यह योजना पसन्द नहीं है किन्तु भारत में इन्हीं जातियों के प्रतिनिधि उसे स्वीकार कर चुके है। यह केवल एक ही दिमाग की उपज नहीं प्रत्युत एक समिति की कृति है, जिसमें कई महत्वपूर्ण दलों के प्रतिनिधि थे। इसलिए महासभा की ओर से आपके पास यह योजना है किन्तु महासभा ने यह भी सूचना की है कि इस प्रश्न के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पंचायत की आवश्यकता है। पंचायत के द्वारा सारे संसार में अदालत ने अपने मतभेद मिटाये है, और महासभा भी पंचायती अदालत के किसी भी निर्णय को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार है। मैंने स्वयं यह सूचित करने का साहस किया है कि सरकार एक न्याय-मण्डल नियुक्त करे, जो इस मामले की जांच कर उसपर अपना निर्णय दे। परन्तु इन बातों में से किसी को कोई भी बात स्वीकृत न हो और यदि इसी शर्त पर विधान-रचना होती हो तो मैं कहूंगा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा अन्य सदस्यों द्वारा पेश की गई इस योजना को स्वीकार करने की अपेक्षा इस उत्तरदायी शासन नामधारी शासन से दूर रहना ही हमारे लिए कहीं अधिक अच्छा है।

मैंने पहले जो कहा है उसीको फिर दुहराता हूं कि महासभा कोई भी ऐसी योजना जो हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों को स्वीकृत होगी स्वीकृत करने के लिए सदैव तैयार रहेगी किन्तु अन्य अल्पसंख्यक जातियों के विशेष प्रतिनिधित्व अथवा विशेष निर्वाचन-मण्डल की योजना का वह कभी समर्थन न करेगी। मौलिक अधिकार और नागरिक स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विशेष धाराओं अथवा संरक्षणों को महासभा सदैव स्वीकृत करेगी। निर्वाचकों की सूची में दाखिल होकर सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल से मत मांगने का सबके लिए खुला अधिकार होगा। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार सर ह्यूबर्ट कार की योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन एवं राष्ट्रीयता के मूल पर ही आघात करने वाली है। यदि भारत को इस प्रकार काट-छांट कर चुने किये हुए अनेक वर्गों के प्रतिनिधि मिलने वाले हो तो उस भारत की क्या दशा होगी यह भगवान ही जाने! यह और

केवल वही मंडल सम्पूर्ण भारत की सेवा कर सकेगा जो केवल गोरों द्वारा नहीं प्रत्युत सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित होगा। स्वयं इस विचार से ही प्रकट होता है कि उत्तरदायी शासन को सदैव राष्ट्रीय भावना के—आबादी के ८५ प्रतिशत किसानों के—हितविरोधी इस वर्ग के साथ लड़ना होगा। मैं तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि हम उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते हों, और यदि हम वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले हों तो मैं यह सूचित करने का साहस करता हूँ कि इन कथित विशेष वर्गों के प्रत्येक व्यक्ति का यह गौरवपूर्ण अधिकार और कर्तव्य होना चाहिए कि वह सर्वमान्य निर्वाचक की सम्मति और निर्वाचन से चुने द्वार से व्यवस्थापिका में प्रवेश करे। आप जानते हैं कि महासभा बालिग मताधिकार से बंधी हुई है और इस बालिग मताधिकार के कारण सबके लिए निर्वाचक सूची में दाखिल होने का मार्ग खुला रहेगा। कोई भी व्यक्ति इससे अधिक नहीं मांग सकता।

अन्य अल्पसंख्यक जातियों के बारे को मैं समझ सकता हूँ किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए 'सबसे अधिक निर्दय घाव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए कायम रहने वाला है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूंगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहां मैं केवल महासभा की ओर से ही नहीं बोलता प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता जो कि उनका नहीं प्रत्युत कट्टर एवं रूढ़िवादी हिन्दुओं का कलंक है, दूर करने का उपाय पृथक निर्वाचक मण्डल अथवा व्यवस्थापिका-सभाओं में विशेष रक्षित स्थान नहीं है। इस समिति को और समस्त संसार को

यह बात लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज-सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलंक को धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की कुरी जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं। किन्तु क्या अछूत भी हमेशा के लिए अछूत रहेंगे ? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू धर्म डूब जाय। इसलिए डा० अम्बेडकर की अछूतों को ऊंचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूंगा कि उन्होंने जो कुछ किया है अवश्य भूल अथवा भ्रम के वश में होकर किया है और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए हैं उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर पर्दा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है इसका मुझे दुःख है किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो अछूतों का हित जो मेरे लिए प्राणों के समान है उसके प्रति मैं सच्चा न होऊंगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूंगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ जब मैं कहता हूँ कि डा० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है। इससे हिन्दू धर्म में जो विभाग हो जायेंगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता। अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायें तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं मैं यह सह लूंगा। किन्तु प्रत्येक गांव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायें तो हिन्दू समाज की जो दशा होगी वह मुझसे न सही जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँ कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊं तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी इसका विरोध करूंगा।

७

सेना

लार्ड चान्सलर महोदय तथा प्रतिनिधि-बन्धुओ मैं जानता हूँ कि इस सबसे अधिक महत्व के प्रश्न पर महासभा का मत प्रकट करने में मेरे कन्धों पर बड़ी जबरदस्त जिम्मेदारी है। मैं इस अवसर पर बोलने के लिए खड़ा हुआ हूँ क्योंकि अब तो मैं इसमें आ फँसा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस चर्चा या बहस की रिपोर्ट तैयार होगी अथवा नहीं। मैं यह भी नहीं जानता कि ये बहसें एकदम बन्द हो जायँगी अथवा आगे बढ़ाई जायँगी। मैं तो यहाँ यदि आवश्यकता हो तो चौबीसों घंटे बिताने के इरादे से आया था इसलिए समय का तो कोई प्रश्न ही नहीं यदि सयोग से मित्रता-पूर्ण बातचीत और विचार-विनिमय से महासभा का उद्देश्य पूर्ण होता हो। मैं यहाँ जानबूझ कर इसी इरादे से भेजा गया हूँ कि चाहे इस परिषद् में खुली चर्चा करके अथवा मन्त्रियों एवं यहाँ के लोकमत पर प्रभाव रखने वाले सार्वजनिक व्यक्तियों तथा भारत के जीवन-मरण के प्रश्न पर दिलचस्पी रखनेवाले सबके साथ खानगी बातचीत करके सम्मानपूर्ण समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। इसलिए महासभा की उस नीति से बँधे होने के कारण जो कि आप सबको विदित है मेरा यह धर्म है कि मैं समझौते का एक भी उपाय शेष न छोड़ूँ। महासभा अपने लक्ष्य पर जल्दी-से-जल्दी पहुँचने के लिए तुली हुई है और इन सब विषयों पर अपने निश्चित मत रखती है। अधिक हकीकत कहूँ तो उत्तरदायी शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेवारी को उठाने के लिए वह आज भी तैयार है अथवा-आपको उसके लिए आज योग्य समझती है।

यह स्थिति होने के कारण मैंने खयाल किया कि इस अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पर यथासम्भव नम्रतापूर्वक और सक्षेप-से-संक्षेप में

महासभा का मत प्रदर्शित किये बिना मैं इसकी चर्चा समाप्त होने नहीं दे सकता।

जैसा कि आप सब जानते हैं, महासभा की मांग यह है कि भारत को पूरा-पूरा उत्तरदायित्व सौंप दिया जाय। इसका अर्थ यह है, और यह महासभा के प्रस्ताव में स्पष्ट कर दिया है कि रक्षण अर्थात् सेना और बाह्य सम्बन्धों पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए; किन्तु उसमें समझौतों की भी गुंजाइश है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस महत्त्वपूर्ण विषय में उत्तरदायित्व न मांग कर भी हम उत्तरदायी शासन पा जायेंगे, यह खयाल कर हमें अपने को और संसार को धोखा न देना चाहिए। मेरा खयाल है कि जिस राष्ट्र का अपने रक्षण-सैन्य पर और अपनी बाह्य नीति अथवा बाह्य सम्बन्धों पर अधिकार न हो वह मुश्किल से ही उत्तरदायी राष्ट्र कहा जा सकता है। यदि राष्ट्र के रक्षा पर—सेना पर—किसी बाहर के व्यक्ति का फिर चाहे वह कितना ही उसका मित्र क्यों न हो अंकुश हो तो वह राष्ट्र निश्चय ही उत्तरदायित्वपूर्ण शासित राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। यह बात हमारे अंग्रेज-शिक्षकों ने अनगिनत बार हमें सिखाई है और इसलिए कुछ अंग्रेज मित्रों ने जब यह सुना कि हमें उत्तरदायी शासन तो मिलेगा किन्तु हमारी अपनी रक्षा-सेना पर हमारा अधिकार न होगा अथवा हम उसकी मांग न करेंगे तो इसपर उन्होंने मुझे ताना भी दिया।

इसलिए मैं यहां अत्यन्त आदरपूर्वक महासभा की ओर से सेना पर रक्षण-सैन्य पर और बाह्य सम्बन्धों पर पूर्ण अधिकार का दावा करने के लिए आया हूँ। मैंने इसमें बाह्य सम्बन्ध का भी समावेश कर दिया है, जिससे कि इस विषय पर अब सर तेजबहादुर सप्रू बोलें तो मुझे न बोलना पड़े।

हम इस निर्णय पर पूरा-पूरा विचार करके पहुंचे हैं। उत्तरदायित्व हाथ में लेते समय यदि हमें ये अधिकार न मिलें क्योंकि हम इसके लिए योग्य नहीं समझे गये तो मैं उस समय की भरपाना नहीं कर सकता

क्योंकि जब हम अन्य विषयों में उत्तरदायित्व का उपभोग करेंगे तो अकस्मात् हम अपने रक्षण-नीति पर अधिकार रखने के योग्य हो जायेंगे।

मैं चाहता हूँ कि कुछ क्षण देकर यह समिति इस बात को समझ ले कि इस समय इस सेना का क्या अर्थ है। मेरे मतानुसार यह सेना फिर चाहे वह भारतीय हो अथवा अंग्रेजी वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। इस सेना के सैनिक सिक्ख हों या गोरखे पठान हों या मद्रासी अथवा राजपूत चाहे जो कोई भी हों जबतक वे विदेशी सरकार द्वारा नियन्त्रित सेना में हैं, मेरे लिए सब विदेशी हैं। मैं उनसे बोल नहीं सकता। बहुत सैनिक मेरे पास चोरी से छिपकर आये हैं और मुझे उनसे बोलने तक में डर लगता था क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि कहीं कोई उनकी रिपोर्ट न कर दे। जहाँ वे रखे जाते हैं साधारणतः हमारा वहाँ जा सकना सम्भव नहीं है। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि वे हमें अपना देश भाई न समझें। जो संसार के किसी देश में नहीं है, वह यहाँ है और वह यह कि उनके—सैनिकों के—और सर्वसाधारण जनता के बीच कोई सम्पर्क नहीं है। भारतीय जीवन के प्रत्येक भाग के सम्पर्क में आने का और जितनों के साथ सम्भव हो सके उन सबसे परिचय करने का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति की हैसियत से मैं इस समिति के सामने अपनी साक्षी देता हूँ यह मेरे अकेले का ही निजी अनुभव नहीं प्रत्युत सैकड़ों और हजारों महासभावादियों का यह अनुभव है कि इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।

इसलिए मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि इस उत्तरदायित्व को एकदम अपने कन्धों पर लेना और इस सेना पर, अंग्रेज-सैनिकों की तो बात ही क्या अधिकार रखना हमारे लिए बहुत बड़ी बात है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह अभागी और दुःखद स्थिति हमारे शासकों ने हमारे लिए पैदा की है। इतना होने पर भी हमें यह जिम्मेदारी ले लेनी चाहिए।
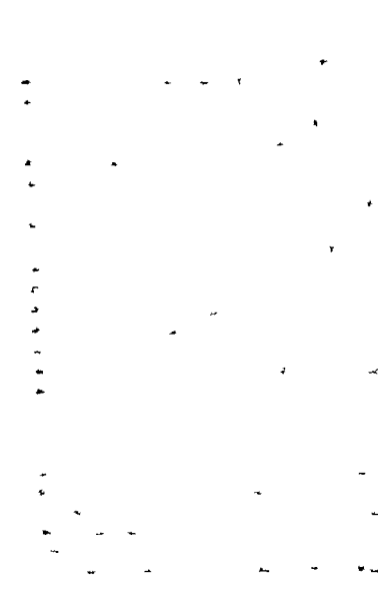
मदनमोहन मालवीय ने टाल दिया उसका उत्तर देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उक्त दोनों ने यह कहा कि विशेषज्ञ न होने के कारण वे यह नहीं बता सकते कि किस हद तक यह सेना बढ़ाई जा सकती है या घटा दी जानी चाहिए। किन्तु मेरे सामने ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। मुझे यह बताने मे कोई हिचक नहीं है कि इस सेना का क्या होना चाहिए। मैं यह बात जोर के साथ कहूँगा कि विदेशी शासन से विरासत में मिले हुए भयकर विघ्नों के साथ भारत के शासन को चलाने का उत्तरदायित्व मैं अपने कंधों पर ले लूं इसके पूर्व यदि यह सेना मेरे अधिकार में न आवे तो इस सारी सेना को तोड़ अथवा बिखेर देना चाहिए।

इसलिए यह मेरी मौलिक स्थिति होने के कारण मैं कहना चाहता हूँ कि यदि आप ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल तथा ब्रिटिश जनता सचमुच भारत के द्वारा भला चाहते हो यदि आप हमें अभी सत्ता सौंपने के लिए तैयार हो तो आप इस शर्त को आवश्यक एवं अनिवार्य समझें कि सेना पर हमारा पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए।

किन्तु मैं आपसे कह चुका हूँ कि इसमें जो खतरा है वह मैं जानता हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सेना मेरा आदेश नहीं मानेगी। मैं जानता हूँ कि अंग्रेज सेनाधिपति मेरी आज्ञा का पालन न करेंगे उसी तरह सिक्ख और अभिमानी राजपूत कोई भी मेरा हुक्म न बजावेंगे। किन्तु फिर भी मैं अपेक्षा करता हूँ कि ब्रिटिश जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश एवं आज्ञा का पालन करा सकूंगा। यह अधिकार एवं अंकुश बदलने के समय वे इन्हीं सैनिकों को नया पाठ पढ़ाने के लिए यहां मौजूद रहेंगे और उन्हें बतावेंगे कि इनके आदेशों का पालन करोगे तो अन्त में तो तुम अपने ही देश-भाइयों की सेवा करोगे। अंग्रेज सैनिकों से भी यह कहा जा सकेगा कि "अब तुम मात्र अंग्रेजों के स्वार्थ और उनके प्राण बचाने के लिए नहीं वरन् अपने

ही देश-भाइयों की सेवा करते हो। इस तरह तुम भारत की विदेशी हमलों से तथा उसी तरह आन्तरिक-विग्रह से रक्षा करने के लिए हो।"
यह मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूँ कि मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ मेरे सामने इसका प्रमाण है मेरी बुद्धि मुझे गवाही देती है कि आज और इस परिषद की चर्चा के परिणाम-स्वरूप मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। किन्तु फिर भी मैं उस स्वप्न को पोषित करता रहूँगा। अपनी जिन्दगी भर इस स्वप्न को पोषित करना मुझे पसन्द होगा। किन्तु यहाँ का वातावरण देखकर मैं जानता हूँ कि सम्भवतया मैं ब्रिटिश जनता में इस विचार एवं भावना का प्रचार नहीं कर सकता कि इस बात को उन्हें भी पोषित करते रहना चाहिए। इसी तरह मैं आज भविष्य की इच्छाओं का अर्थ करूँगा। इसी बात में ग्रेट ब्रिटेन को अपना गौरव मानना चाहिए यह उसका कर्त्तव्य होना चाहिए कि इस समय वह हमें अपनी रक्षा करने के योग्य बना दे। हमारे पर कतर देने के बाद अब यह उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हमारे पर सीधे दे जिससे हम उसी तरह उड़ सकें जिस तरह वह उड़ता है। यही वास्तव में मेरी महत्वाकांक्षा है और इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि सेना पर मुझे अधिकार न मिलेगा तो मैं अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करता रहूँगा। मैं अपने-आपको यह धोखा देने से इन्कार करता हूँ कि यद्यपि मैं अपनी सेना का नियन्त्रण नहीं कर सकता फिर भी मैं उत्तरदायी शासन चलाने के लिए तैयार हूँ।

आखिर भारत कोई ऐसा देश तो है नहीं जो कभी यह न जानता हो कि अपनी रक्षा किस तरह करनी चाहिए? इसके लिए उसके पास पूरी सामग्री मौजूद है। मुसलमानों को विदेशी हमला का कोई डर है ही नहीं। सिक्ख इस बात को ही मानने से इन्कार कर देंगे कि उन्हें कोई जीत सकता है और गुरखा में ज्योंही राष्ट्र-भावनाओं का विकास हो जायगा त्योंही वह यह उठेगा "मैं अकेला ही भारत की रक्षा कर सकूँगा।" फिर हमारे यहाँ राजपूत हैं जो फौज की एक टोली-सी चर्चा-

पोशी नहीं हमारो धर्मपोशी के जन्मदाता कहे जाते हैं। यह बात हमें अंग्रेज-इतिहासज्ञ कर्नल टाड ने बताई है। उन्होंने हमें बताया है कि राजपूताने की प्रत्येक घाटी एक थर्मोपोली है। क्या हम लोगों को रक्षण-कला सिखाने की आवश्यकता है? मैं जानता हूँ कि यदि मैं अपने कन्धों पर उत्तरदायित्व उठाऊं तो ये सब लोग उसमें मेरा हाथ बटावेंगे। मैं यहां यह देखकर तीव्र वेदना अनुभव कर रहा हूँ कि हम लोग अभी तक साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा न कर सके किन्तु इस प्रश्न का निपटारा जब कभी भी होगा उसमें यह तो पूर्वनिर्धारित होना ही चाहिए कि हम एक-दूसरे पर विश्वास रखेंगे। चाहे शासन में प्राधान्य मुसलमानों का हो चाहे सिक्खों का चाहे हिन्दुओं का वे मुसलमान सिक्ख अथवा हिन्दू की तरह नहीं प्रत्युत एक भारतीय की तरह शासन करेंगे। यदि हममें एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रहेगा और हमें एक-दूसरे के हाथ कट मरना न होगा तो इसके लिए हमें अंग्रेजों की जरूरत रहेगी। फिर उस दशा में हमें उत्तरदायी शासन की बातचीत न करनी चाहिए।

कम-से-कम मैं तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि सेना पर अधिकार हुए बिना ही उत्तरदायी शासन मिल गया है। मुझे अपने हृदय की सीधी-से-सीधी तह से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमें उत्तरदायी शासन लेना हो और महासभा उत्तरदायी शासन चाहती है— उसका अर्थात् महासभा का अपने पर, जनसमूह पर और उन सब बहादुर सैनिक जातियों पर विश्वास है इतना ही नहीं अंग्रेजों पर भी उसका यह विश्वास है कि किसी दिन वे अपना कर्तव्य-पालन करेंगे और हमें पूरा अधिकार सौंप देंगे—या हमें अंग्रेजों में भारत के प्रति वह प्रेम फूंक देना चाहिए जिसमें कि भारत अपने पैरों पर खड़ा होने की शक्ति प्राप्त कर सके। यदि अपने जनता का यह खयाल हो कि ऐसा होने के लिए *अभी एक शताब्दी की जरूरत है तो इस शताब्दी भर महासभा जंगलों* में भटकती रहेगी और उसे उस भयंकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा। आपदाओं के तूफान और गलतफहमियों के बवण्डर का मुकाबला

इंग्लैण्ड के उपनिवेशों के साथ का सम्बन्ध होता है। यदि बाह्य सम्बन्धों का यही अर्थ हो तो मैं समझता हूँ कि इस बोझ को उठाने और इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्यपालन करने में हम पूरे समर्थ हैं। निश्चय ही हम अपने ही पड़ोसियों के साथ अपने ही पड़ोसियों और हमारे ही देश बन्धु भारतीय नरेशों के साथ मुलह भी वार्ता तय कर सकेंगे, अपने पड़ोसी अफगानों के साथ और समुद्र-पार जापानियों के साथ प्रगाढ़ मित्रता पैदा कर सकते हैं, और निश्चय ही उपनिवेश के साथ भी संधि कर सकते हैं। यदि उपनिवेश अपने यहां हमारे देशवासियों को पूर्ण आत्म-सम्मान के साथ न रहने देंगे तो हम उनसे निपट लेंगे।

सम्भव है कि मैं अपनी मूर्खता के कारण ऐसा कह रहा हूँ किन्तु आप लोगों को समझ लेना चाहिए कि महासभा में मेरे जैसे हजारों और लाखों मूर्ख पुरुष और स्त्रियां हैं और मैं उन्हींकी ओर से आदर पूर्वक यह दावा पेश करता हूँ और फिर कह देना चाहता हूँ कि जिन सरंक्षणों की कल्पना की है उन्हें स्वीकार कर हम अपने वचनों का अक्षरशः पालन करेंगे।

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने संरक्षणों की रूपरेखा बता दी है। मैं उनके कथन के अधिकांश से सर्वथा सहमत हूँ किन्तु वही एक-मात्र संरक्षण नहीं है। यदि अंग्रेज और भारतवासी मिलकर विचार करेंगे और मन में बिना किसी प्रकार का पाप रखे एक ही दिशा में प्रयत्न करेंगे तो मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि कदाचित हम ऐसे संरक्षण तैयार कर सकेंगे जो कि भारत और इंग्लैण्ड दोनों के लिए समानतः सम्मानपूर्ण होंगे और जो प्रत्येक अंग्रेज के न्यायों की और भारत द्वारा स्वीकृत उनके प्रत्येक हितों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त-क्षम होंगे। लार्ड चान्सलर महोदय इससे अधिक आगे मैं जा नहीं सकता। इस सभा का समय लेने के लिए मैं सहस्र बार क्षमा मांगता हूँ किन्तु दिन-प्रति-दिन यहां बैठने और इन चर्चाओं का स्पष्ट परिणाम किस प्रकार निकल सके इसपर अहोरात्रि चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में जो

भाव उठ रहा है, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं। जो भावना मुझे प्रेरित कर रही है वह आप समझ सकते हैं। मेरी यह भावना अंग्रेजों के प्रति पूर्णतः सद्भाव की और भारतवासियों के प्रति पूर्ण सेवाभाव की है।

पृथक होना चाहने वालों के जिस समूह के विषय में मुझे उस दिन को दुःखपूर्वक बोलना पड़ा था उसमें सम्मिलित हो जाने की भी यों की इच्छा भी इसमें शामिल है। पिछली परिषद में स्वीकृत प्रस्ताव के अध्ययन का मैंने प्रयत्न किया है। यद्यपि आप उससे परिचित हैं फिर भी मैं उसे पुनः पढ़ देना चाहता हूं क्योंकि उसके संबंध में मुझे कुछ बातें कहनी होंगी। प्रस्ताव यह है— अंग्रेज व्यापारी-वर्ग के कहने से सबने यह सिद्धांत सामान्यतः स्वीकार किया है कि भारत में व्यापार करने वाले अंग्रेजी व्यापारीवर्ग फर्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होना चाहिए।

प्रस्ताव के शेष भाग के पढ़ने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं। पर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हुए भी मुझे अत्यन्त दुःख के साथ इस अमर्यादित प्रस्ताव के साथ मतभेद प्रदर्शित करना पड़ता है। इसलिए कल जब सर तेजबहादुर सप्रू ने तुरन्त ही यह बात स्वीकार करली कि यह प्रस्ताव अनिश्चित है और उसमें सुधार की गुंजायश है तो मुझे प्रसन्नता हुई। यदि आप इस प्रस्ताव का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि उसका रूप कितना व्यापक है! भारत में व्यापार करने वाले अंग्रेज-व्यापारीवर्ग फर्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होगा। यदि मैं इसको ठीक समझा हूं तो यह एक भयानक वस्तु है और कम-से-कम मैं तो इस तरह के प्रस्ताव से भारत की भावी सरकार की तो बात ही क्या महात्मा तक को नहीं बांध सकता।

इसमें किसी तरह की भी योग्यता अथवा मर्यादा का नामोनिशान भी नहीं है। अंग्रेज-व्यापारीवर्ग के बिलकुल वही अधिकार कायम रहेंगे जो कि भारत में पैदा हुए प्रजाजन के होंगे इसलिए यानी जातीय भेदभाव अथवा ऐसी कोई बात ही न होगी इस सम्बन्ध में

अंग्रेज व्यापारीवर्ग भारतीय प्रजाजन के समान ही पूरे अधिकार भोगेंगे। मैं अपने पूरे बल के साथ कहना चाहता हूँ कि मैं तो इस सूत्र तक को सम्मति न दूंगा कि भारत में उत्पन्न सभी प्रजाजनों के अधिकार अविकल अथवा समान होंगे। इसका कारण मैं आपको अभी बताता हूँ।

मैं समझता हूँ आप इस बात को तुरन्त स्वीकार कर सकें कि मौजूदा सरकार ने जिन बातों की ओर दुर्लक्ष्य किया है, स्थिति म समानता लाने के लिए, भारत की भावी सरकार को उनके प्रति सतत् ख्याल रखना ही पड़ेगा अर्थात्, जिन लोगों को प्रकृति अथवा स्वयं सरकार की कृपा से धन-वैभव अथवा अन्य साधन-सुविधाएं मिली हुई हैं, उनके मुकाबले में उसे भूखे मरते भारतीयों के प्रति सदैव पक्ष पात करना होगा। कदाचित् भावी सरकार को अपने मजदूरों को मुफ्त म देने के लिए मकान बनवा देना आवश्यक प्रतीत हो उस समय सम्भव है भारत के धनिक लोग यह कहें कि 'यद्यपि हमें इस प्रकार के घरों की आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि सरकार अपने मजदूरों के लिए घर बनवाती है तो हमें भी सहायता व साधन दे। लेकिन सरकार के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं। उस अवस्था में वह अवश्य ही मजदूरों के लिए पक्षपात करेगी। इस समय उक्त प्रस्ताव में निर्धारित सूत्र के अनुसार धनिक लोग कहेंगे कि उनके विरुद्ध भेद भाव किया गया है।

इसीलिए मैं साहसपूर्वक सूचित करता हूँ कि जब कि हम इस परिषद् में, जिस हद तक सम्राट् की सरकार भारत के भावी विधान की रचना में हमारी सहायता स्वीकार करती है उस हद तक सहायता पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस अमर्यादित सूत्र का स्वीकार किया जा सकना सम्भव ही नहीं सकता।

किन्तु यह कहने के बाद मैं अंग्रेज-व्यापारियों और यूरोपियन फर्म्स की इस उचित मांग से सर्वथा सहमत हूँ कि उनके साथ किसी प्रकार

का जातीय पक्षपात न होना चाहिए। मैं जिसे कि दक्षिण अफ्रीका की महान सरकार के साथ उसके रंगभेद और भारतीयों के प्रति भेदभाव-मूलक क़ानून के विरोध में २ वर्ष तक लड़ना पड़ा था भारत में अभी मौजूद अथवा भविष्य में आना चाहने वाले अंग्रेज मित्रों के साथ उसी प्रकार के भेदभाव किये जाने की बात का कभी समर्थन नहीं कर सकता। मैं यह बात महासभा की ओर से भी कह रहा हूँ। महासभा का भी यही मत है।

इसलिए उक्त सूत्र के बजाय मैं कुछ ऐसा सूत्र सुझाता हूँ जिसके लिए कि मुझे वर्षों तक जनरल स्मट्स के साथ लड़ने का सुख और सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उसमें परिवर्तन हो सकता है किन्तु मैं तो उसे केवल इस समिति के और विशेषतः अंग्रेज-मित्रों के विचार के लिए पेश करता हूँ। वह इस प्रकार है—"स्वराज्य में भारत में उत्पन्न किसी भी नागरिक पर जो प्रतिबन्ध न लगाया गया होगा वैसा कोई भी प्रतिबन्ध भारत में क़ानून के अनुसार रहने वाले अथवा प्रवेश करने वाले किसी भी व्यक्ति पर केवल—मैं 'केवल' शब्द पर ज़ोर देता हूँ—जाति रंग अथवा धर्म के कारण न लगाया जायगा।

मैं समझता हूँ कि यह सबके लिए संतोषप्रद सूत्र है। कोई भी सरकार इससे आगे जा नहीं सकती। मैं इस सूत्र के गर्भित अर्थ पर सदोष न अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ और मुझे खेद है कि मत बंध के सूत्र से लार्ड रीडिंग ने जो अर्थ निकाला था अथवा निकालना चाहा था उससे यह गर्भित अर्थ भिन्न है। इस सूत्र में एक भी अंग्रेज़ या अन्य यूरोप के किसी भी निवासी के साथ उसके अंग्रेज़ अथवा यूरोपियन होने के कारण कोई भेदभाव न होगा। मैं यहां अंग्रेज़ अथवा अन्य यूरोपियन अथवा अमेरिकन या जापानी के बीच कोई भेदभाव नहीं करता। ब्रिटिश उपनिवेशों ने रंग और जाति-भेद के निश्चित आधार पर प्रतिबन्धक क़ानून बनाकर मेरी नम्र-सम्मति में अपनी क़ानून की पुस्तक को जिस प्रकार दूषित किया है मैं उसका अनुकरण न करूंगा।

मुझे यह विचार प्रिय है कि स्वतन्त्र भारत समस्त संसार को एक दूसरी ही तरह का पाठ पढ़ावेगा एक दूसरे ही प्रकार का उदाहरण उसके सामने रक्खेगा । मैं यह कभी न चाहूँगा कि भारत सर्वथा एकाकी जीवन व्यतीत करे और इस प्रकार अपने चारों ओर गढ़-कोट खड़े करके अपनी सीमा में किसी को प्रवेश अथवा व्यापार ही न करने दे । किन्तु इतना कहने के बाद जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ 'स्थिति में समानता लाने के लिए' की जाने योग्य कई बातें मेरे मन में हैं । मुझे भय है कि पूँजीपतियों जमींदारों ऊँची कही जाने वाली जातियों और अन्त में वैज्ञानिक विधि से अंग्रेज-शासकों ने दीन दलित पतितों को जिस कीचड़ में फसा दिया है, उससे उन्हें निकालने के लिए भारत को आगामी अनेक वर्षों तक क़ानून बनाने में संलग्न रहना पड़ेगा । यदि हमें इन लोगों को कीचड़ में से निकालना हो तो अपना घर व्यवस्थित करने के लिए, इन लोगों का विचार पहले करना तथा जिस बोझ के नीचे वे कुचले जा रहे हैं, उससे उन्हें छुड़ाना भी राष्ट्रीय सरकार का कर्त्तव्य होगा । जो जमीं-दार, धनिक अथवा विशेष अधिकार-भोगी लोग—चाहे वे अंग्रेज हों या भारतीय—यदि यह देखें कि उनके साथ भेदभावपूर्ण बरताव होता है तो मैं उनके प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट करूँगा किन्तु मुझमें सहायता दे सकने की शक्ति होगी तो भी मैं सहायता न करूँगा क्योंकि मैं तो इस क्रिया में उनकी सहायता चाहूँगा और बिना उनकी सहायता के इन लोगों को कीचड़ में से बाहर न निकाल सकूँगा ।

यदि आप चाहें तो अस्पृश्यों की दशा पर नज़र डालिए और देखिए कि यदि क़ानून उनका सहायक बनकर उनके लिए कई कोसों का प्रदेश अलग कर दे तो उनकी क्या स्थिति हो जाती है ? आज उनके पास ज़रा भी ज़मीन नहीं है । आज वे उच्च जाति के कहे जाने वाले लोगों की दया पर, और मुझे कहने दीजिए कि सरकार की दया पर, जीवित हैं । वे आज एक जगह से दूसरी जगह खदेड़े जा सकते हैं किन्तु इसकी न तो वे शिकायत कर सकते हैं, न क़ानून की सहायता प्राप्त कर उससे

है। इसलिए व्यवस्थापिका-सभा का पहला काम यह देखना होगा कि वह किस हद तक इनकी स्थिति समान करने के लिए, इन लोगों का मुफ्त-दस्त से सहायतार्थ रकम दे।

सहायता की ये रकमें किनकी जेबों में से आयेंगी? ईश्वर की जेबों में से नहीं। सरकार के लिए ईश्वर आकाश से रुपयों की वर्षा न करेगा। स्वभावतः यह रकम धनिक लोगों के पास से ही आयगी जिनमें अंग्रेज भी शामिल हैं। क्या वे कहेंगे कि यह भेदभाव है? वे वैध कहेंगे कि उनके साथ का यह भेदभाव उनके यूरोपियन होने के कारण नहीं है बल्कि इसलिए है कि इनके पास पैसा है और दूसरे के पास पैसा नहीं है। इसलिए यह धनिकों और गरीबों की लड़ाई होगी और फिर भी बात की आशंका हो और यदि ये सब वर्ग करोड़ों मूक प्राणियों के सिर पर बन्दूक तान कर कहें कि जबतक तुम हमारी मिल्कियत और हमारे अधिकार की अक्षुण्णता का निश्चित वचन नहीं दे देते तबतक तुम्हें स्वराज्य न मिलेगा तो मुझे भय है कि राष्ट्रीय सरकार का जन्म ही न हो सकेगा।

मैं समझता हूँ कि महासभा का ध्येय और मैंने जो सूत्र बताया है उसका गर्भित अर्थ क्या है इसका मैंने काफी परिचय करा दिया है। वे यह बात कभी न पायेंगे कि क्योंकि वे अंग्रेज यूरोपियन बासाली अथवा किसी अन्य जाति के हैं इसलिए उनके साथ भेदभाव किया जाता है। जिन कारणों से उनके साथ भेदभाव किया जायगा वे ही कारण भारत में उत्पन्न प्रजाजनों के साथ भी लागू होंगे।

मेरे पास जल्दी में तैयार किया हुआ और एक सूत्र है इसलिए कि मैंने यहीं पर लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू का भाषण सुनते सुनते ही तैयार किया है।

यह दूसरा सूत्र जो मेरे पास है वह वर्तमान अधिकारों के सम्बन्ध में है—

"किसी भी न्यायोचित अधिकार में जो आमतौर पर राष्ट्र के

पर्यौक्य हितों के विरुद्ध न होगा ऐसे अधिकारों पर लागू होने वाले कानून के सिवा और किसी तरह हस्तक्षेप न किया जायगा।

आज अंग्रेजी सरकार के सिर पर कर्ज देना है उसके भावामी सरकार के अपने सिर पर लेन-सम्बन्धी महासभा के प्रस्ताव में जो बात आप देखते हैं, निश्चय ही वह मेरे मन में भी है। जिस प्रकार हमारी यह मांग है कि इस कर्ज को अपने सिर पर लेने के पूर्व निष्पक्ष न्याय-मण्डल द्वारा उसकी जांच होनी चाहिए उसी तरह आवश्यकता होने पर वर्तमान अधिकारों की नियमानुसार जांच किये जाने की भी छूटी होनी चाहिए। इसलिए प्रस्त कर्ज से इनकारी का नहीं है, वरन् उसकी जांच हो जाने के बाद स्वीकार करने का ही है। यहां हममें कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने यूरोपियन लोगों का जो विशेषाधिकार तथा एकाधिकार भोग रहे हैं, अध्ययन किया है। किन्तु अकेले यूरोपियनों की बात नहीं है। भारतीयों में भी ऐसे लोग हैं—मेरे ध्यान में निश्चय ही भारत ऐसे भारतीय हैं—जो आज जिस भूमि पर कब्जा किये हुए हैं वह उन्होंने सेवा की किसी सेवा के बदले में नहीं पाई है मैं यह भी नहीं कह सकता कि सरकार की सेवा के एवज में वह उन्हें मिली है क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि उससे सरकार को कुछ लाभ पहुंचा है वरन् वह उन्हें दी गई है किसी अधिकारी की सेवा के बदले में। और यदि आप मुझे कहें कि सरकार इन रियायतों और विशेषाधिकारों की जांच न करेगी तो मैं आपसे फिर कहूंगा कि अधिकारों की ओर से समितों की ओर से शासनतन्त्र चलाना असम्भव हो जायगा। इसलिए आप देखेंगे कि इसमें यूरोपियनों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। दूसरा सूत्र भी यूरोपियनों पर उतना ही लागू होता है जितना भारतीयों पर या यों कहिए जितना सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर फिरोज सेठना पर लागू होता है। यदि इन्हीं सरकारी अधिकारियों की सेवा करके कुछ लाभ उठाया होगा बीसों अथवा करोड़ों जमीन प्राप्त की होगी तो यदि शासन की लगाम मेरे हाथ में होगी तो मैं तुरन्त ही वह उनके पास से

छीन लूंगा। वे भारतीय हैं, इसलिए मैं उन्हें छोड़ न दूंगा और उतनी ही तत्परता से मैं सर ह्यू बर्ने कार अथवा मी बॅपोम के पास से भी बरबा लूंगा फिर चाहे वे कितने ही प्रशंसायोग्य क्यों न हों और मेरे प्रति कितना ही मित्र-भाव न रखते हों। यह विश्वास मैं आपको दिला देना चाहता हूँ कि कानून किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात न करेगा। यह विश्वास विधान के पार इससे आगे मैं जा नहीं सकता। इसलिए 'न्यायार्जित' शब्द का वास्तविक अभिप्राय यह है कि प्रत्येक अधिकार अथवा हित निष्कलंक और सीज़र की स्त्री के समान सन्देह से परे होना चाहिए, और इससे जब ये सारी बातें सरकार की नज़र में आवें तो तुम इनकी जांच की अपेक्षा रखोगे।

इसके बाद 'राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध न हों' ये शब्द आते हैं। बिहार में कोई एकाधिकार ऐसे हैं जो निस्सन्देह न्यायत: प्राप्त हैं पर राष्ट्र के सर्वोच्च हितों को हानि पहुंचा कर पैदा किये गये हैं। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ, इससे आपको कुछ मनोरंजन होगा किन्तु उसके सम्बन्ध में कुछ पक्षापक्षी के लिए अवकाश नहीं। इस नयी दिल्ली नामधारी सफ़ेद हाथी को लीजिए। इसपर करोड़ों रुपये ख़र्च हुए हैं। मान लीजिए कि भावी सरकार इस निर्णय पर आवे कि यह सफ़ेद हाथी अपने पास है इसलिए इसका कुछ उपयोग होना चाहिए, कल्पना कीजिए कि पुरानी दिल्ली में प्लेग अथवा हैजा फैला है और हमें ग़रीबों के लिए अस्पतालों की ज़रूरत है। इस स्थिति में हम क्या करें? क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल या ऐसी चीज़ बनवा सकेगी? नहीं, ऐसी कोई बात न होगी। हम इन इमारतों पर अधिकार करेंगे इन प्लेग-ग्रस्त रोगियों को उनमें रखेंगे और उनका अस्पताल की तरह उपयोग करेंगे क्योंकि मेरे मत से ये इमारतें राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध हैं। ये भारतवर्ष के करोड़ों लोगों की स्थिति को प्रकट नहीं करतीं। ये तो इस मेज़ के पास बैठे हुए धनिक लोगों की शोभा देने जैसी हो सकती हैं—भोपाल के नवाब साहब अथवा सर पुरुषोत्तमदास

ठाकुरदास पर फ़िरोज़ सेठना अथवा सर तेजबहादुर सप्रू के साथ हो सकती है किन्तु जिन लोगों के पास रात को सोने के लिए स्थान नहीं और खाने के लिए रोटी का टुकड़ा नहीं उनकी दशा के साथ इनका ज़रा भी मेल नहीं हो सकता। यदि राष्ट्रीय सरकार इस निर्णय पर पहुँचे कि यह अवश्य अनावश्यक है तो इस बात की कुछ परवाह नहीं कि उसपर कितने ही अधिकार क्यों न हों वे छन सब छिने जाकर वे हमारे में से भी जायगी और मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि वे बिना किसी मुआवज़े के ले ली जायगी क्योंकि यदि आप इस सरकार से मुआवज़ा दिलाना चाहेंगे तो उसका अर्थ होगा माशा को राम के लिए उन्हों से छीनना। यह एक असम्भव बात होगी।

महासभा जिस सरकार की कल्पना करती है, वैसी सरकार का अस्तित्व स्थापित होने वाला हो तो आपको यह कड़वी गोली निगलनी होगी। इस विश्वास के बाते में रखकर कि सब बातें सर्वथा ठीक होंगी मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। महासभा की ओर से मैं सारी बातें आपके सामने रख देना चाहता हूँ। मैं मन में किसी तरह की कुछ बात छिपा कर नहीं रखना चाहता और इसके बाद यदि महासभा का दावा आपको स्वीकृत हो तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा किन्तु यदि आपको यह स्वीकृत न हो यदि आज मुझे ऐसा प्रतीत हो कि मैं आपके हृदय को स्पर्श कर अपनी बात आपसे नहीं मनवा सकता तो जबतक आप उसका हृदय-परिवर्तन नहीं हो जाता और आप भारत के करोड़ों लोगों को यह अनुभव करने का मौका नहीं देते कि अन्त में उन्हें राष्ट्रीय सरकार मिल गई, तबतक महासभा को भटकते रहना और आपके मत-परिवर्तन का प्रयत्न करते रहना होगा।

प्रस्ताव की इन पंक्तियों पर अभी तक किसी ने एक भी प्रश्न नहीं कहा है—

"यह स्वीकार किया गया कि भारत में यूरोपियन जातियों को व्यापारी मामलों में जो अधिकार हैं वे कायम रहने चाहिएं।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इसके सब वर्णित पक्षों का मैं अध्ययन नहीं कर सका हूँ। मुझे यह कह सकने के लिए खुशी है कि कुछ दिनों से सर हर्बर्ट कार, श्री ब्ल्योम और कई मित्रों के साथ मैं मित्रतापूर्ण और लाभदायी बातचीत चला रहा हूँ। उनके साथ इसी विषय की चर्चा कर रहा था और मैंने उनसे पूछा कि इन दोनों बातों का क्या अर्थ है? और उन्होंने कहा कि दूसरी जातियों के लिए भी यही बात है। मैं उनसे इस बात का निश्चय न कर सका कि दूसरी जाति के लिए भी यही बात होने का क्या अर्थ है। मेरा ख्याल है, इसका यह अर्थ है कि दूसरी जातियाँ भी अपनी ही जाति की जूरी या पंच होने की मांग कर सकती हैं। इसका सम्बन्ध जूरी के जरिये होने वाले मुकद्दमों से है। मुझे भय है कि मैं इस सूत्र का समर्थन नहीं कर सकता।

मैं ऐसे अपवादों का समर्थन कर नहीं सकता—उनका साथ नहीं दे सकता। मेरा ख्याल है कि राष्ट्रीय सरकार को ऐसे प्रतिबन्धों से जकड़ रखना सम्भव नहीं है। आज भावी भारतीय राष्ट्र का अंग बनने वाली सब जातियों को सद्भाव से श्रीगणेश करना चाहिए, परस्पर-विश्वास से आरम्भ करना चाहिए, अन्यथा आरम्भ ही न करना चाहिए। यदि हमसे कहा जाय कि हमें उत्तरदायी शासन सम्भवतः मिल ही नहीं सकता तो वह स्थिति समझ में आ सकती है। किन्तु हमसे कहा जाता है कि ये सब संरक्षण ये सब अपवाद कायम रहने ही चाहिएं तो वह स्वतन्त्रता और उत्तरदायी शासन न होगा वह तो केवल संरक्षण होंगे। संरक्षण सारी सरकार को खा जायंगे। यदि ये सब संरक्षण दिये जाने वाले हों और यहां की सब बातें मूर्त अथवा व्यावहारिक रूप धारण करने वाली हों और हमसे कहा जाय कि तुम्हें उत्तरदायी शासन मिलने वाला है तो वह सर्वथा वैसा ही उत्तरदायी शासन होगा जैसा कि जेल में कैदियों का होता है। जेल की कोठरियों में ताला लगाने और जेलर के रवाना होते ही कैदियों का पूर्ण स्वराज्य हो जाता है। २१ वर्ग फुट अथवा ७ फुट लम्बी ३ फुट चौड़ी इस कोठरी के अन्दर

पूँजियों का पूरा स्वराज्य होता है, जिसमें अमरद अपना-अपना अधिकार के संरक्षणों को लिये हुए आराम से बैठे हों।

इसलिए अपने अंग्रेज मित्रों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें अपने अधिकारों के संरक्षण की माँग का यह विचार वापस ले लेना चाहिए। मैं यह सूचित करने का साहस करता हूँ कि मैंने जो दो सूत्र पेश किये हैं, वे स्वीकार कर लिये जायं। उन्हें आप जिस तरह चाहें काट-छाट कर ठीक कर सकते हैं। यदि इनकी शब्द-योजना सन्तोषजनक न हो तो मुझे ये दूसरे शब्द सुझाएं। किन्तु मैं साहस के साथ कहता हूँ कि इन निषेधात्मक सूत्रों से बाहर, जिनमें कि आपके विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है, आपको नहीं जाना चाहिए—क्या मैं कहूँ कि आप इससे अधिक मांगने का साहस *नहीं कर सकते ? इतना तो हुआ वर्तमान अधि*कारों और भावी व्यापार के सम्बन्ध में।

श्री जयकर कल मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे और उसमें उन्होंने जो विचार प्रकट किये हैं मैं उनसे अपनी पूरी सहमति प्रकट करता चाहता हूँ। महासभा की धारणा यह है कि मुख्य उद्योगों को सरकार स्वयं अधिकार में न ले तो कम-से-कम उनके संचालन व्यवहार और विकास में तो सरकार की आवाज का प्राधान्य होना ही चाहिए।

हिन्दुस्तान जैसे गरीब और पिछड़े हुए देश की इमारत और अधिक पाये बढ़े हुए उद्योग प्रधान और के सुपुर्द नहीं की जा सकती। मेरे विचार में आज जो बात ग्रेट ब्रिटेन के लिए हितकारी है, वही भारत *के लिए विषरूप है। भारत को अपना ही सर्वेक्षण अपनी ही राजनीति* अपनी ही उद्यागनीति और अन्य सब अपना ही विकसित करना है। इसलिए मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में मुझे डर है कि अंग्रेजों ईर्ष्याल या *ही नहीं* अन्य देशों को यह प्रतीत होगा कि उनके साथ न्याय नहीं हो रहा है। किन्तु एक सरकार के खिलाफ 'न्याय' का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता।

तटवर्ती व्यापार के लिए भी महासभा को उसे पूर्णरूप से विकसित करने के प्रति पूरी-पूरी सहानुभूति तो है ही किन्तु यदि तटवर्ती व्यापार सम्बन्धी बिल अर्थात् मसविदे में यूरोपियन होने के कारण उनके साथ कुछ भेदभाव किया गया होगा तो मैं यूरोपियनों से मिल जाऊंगा और उस मसविदे का अथवा अंग्रेजों के साथ अंग्रेज न होने के कारण किये गये भेदभाव के प्रस्ताव का विरोध करूंगा। किन्तु अंग्रेजों ने तो भारत में अत्यन्त विशाल स्वार्थ जमा रखे हैं। बंगाल में मैंने नदी के मार्ग से काफी सफर किया है और वर्षों पहले इरावती का प्रवास भी किया है। इसलिए इस व्यापार के सम्बन्ध में मैं कुछ जानता हूं। इन जबर्दस्त अंग्रेजी मण्डलों ने रियायतों विशेषाधिकारों और सरकार की कृपा द्वारा जो कम्पनियां खड़ी करली हैं और जो व्यापार जमा लिया है उसका कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता।

चिटगांव और रंगून के बीच एक नई स्थापित देशी कम्पनी के सम्बन्ध में आपमें से कुछ ने सुना होगा। इस कम्पनी के मुसलमान मालिक बड़ी मुश्किल से इसे चला रहे हैं। रंगून में वे मुझसे मिले और पूछने लगे कि मुझसे कुछ हो सकता है या नहीं? उनके लिए मेरे हृदय में पूरा-पूरा सद्भाव तो उत्पन्न हुआ किन्तु कुछ किया नहीं जा सकता था। क्या हो सकता था? उनके मुकाबले में जबर्दस्त ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी खड़ी है। उसने इस उभरती हुई कम्पनी को दबाने के लिए भाव में तत्काल कमी करदी है और लगभग कुछ भी किराया लिये बिना मुसाफिरों को ले जाती है। मैं इस प्रकार के एक-के-बाद-एक अनेक उदाहरण दे सकता हूं। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं कि यह अंग्रेजी कम्पनी है। इस व्यवसाय को दबा देने के विचार से स्थापित हिन्दुस्तानी कम्पनी होती तो वह भी ऐसा ही करती। मान लीजिए कि कोई हिन्दुस्तानी कम्पनी पूंजी ले जाती हो—जिस प्रकार आज ऐसे भारतीय मौजूद हैं जो अपनी पूंजी को भारत में लगाने की अपेक्षा अपना द्रव्य भारत से बाहर लगाते हैं मान लीजिए कि राष्ट्रीय सरकार सही नीति

पर उड़ी जा रही है इस भय से भारतीयों का कोई विशाल संगठन अपना सब मुनाफ़ा खोकर अपनी रकम को सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी दूसरे देश में लगाता है। मेरे आप इससे एक क़दम और आगे बढ़कर मान लीजिए कि ये हिन्दुस्तानी मालिक अधिकाधिक वैज्ञानिक सम्पूर्ण और त्रुटिरहित संगठन करने के लिए यूरोपियनों के समान जितना सम्भव हो सके कौशल का उपयोग करें और इन असहाय कम्पनियों को अस्तित्व में ही न आने दें तो मैं अवश्य अपनी आवाज उठाऊंगा और बिटगाव जैसी कम्पनी के संरक्षण के लिए क़ानून बनाऊंगा।

कुछ मित्र पैरा-ठी में अपने जहाज़ तक न चला सकते थे। उन्होंने मुझे इस बात का निश्चय कराने के लिए सुनिश्चित प्रमाण दिये कि यह बात सर्वथा असम्भव हो गई थी। उन्हें परवाने (लाइसेन्स) मिल नहीं सकते थे और मनुष्य जो साधारण सुविधाएं पाने का अधिकारी है वे तक न मिल सकती थीं। हममें से प्रत्येक जानता है कि पैसा क्या ख़रीद सकता है सम्मान एवं प्रतिष्ठा क्या ख़रीद सकती है और जब ऐसी प्रतिष्ठा क़ायम हो जाय जो कि मर तरह पौधा को मार डालती है तो ४२ वर्ष पूर्व कहे हुए सर जॉन गार्स्ट के शब्दों में "ऊंचे वृक्ष मात्र को उड़ा देना पड़ता है। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों को इन नन्हें पौधों को नहीं कुचल डालने देना चाहिए। तट अथवा किनारे के व्यापार के सम्बन्ध में यही वास्तविक मांग है। सम्भव है इस सम्बन्धी मसविदे (बिल) की भाषा अनगढ़ी हो। इसको लिखा नहीं किन्तु मेरा ख़याल है कि इसका सार-तत्त्व सर्वथा सही है।

व्यापारिक की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन काम है। आज मैं महासभा की मनोदशा को जैसी समझता हूं उसे देखते हुए महासभा क्या उचित समझेगी अथवा मुझे क्या उचित प्रतीत होगा यह मैं आज इसी क्षण कहने की ज़िम्मेदारी अपने सिर पर नहीं ले सकता। यह बात ऐसी है जिसमें सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य मित्रों के साथ

बातचीत करता और उनके मन के विचार जानना चाहूंगा; क्योंकि मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस चर्चा अर्थात् वादविवाद से मैं इस बात की तह तक पहुंच नहीं सका हूँ। मैंने महात्मा की स्थिति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि हमें जातीय भेदभाव की जरा भी मान्य समझता नहीं है। किन्तु इस स्थिति को स्पष्ट कर देने के बाद 'नागरिक' शब्द की व्याख्या के विषय में महात्मा के मत का तात्कालिक निर्णय करना मय नहीं रह जाता। इसलिए 'नागरिक' शब्द के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि अभी तुरन्त तो इस व्याख्या के सम्बन्ध में मैं अपना मत स्थगित रखता हूँ।

इतना कहने के बाद यह बात कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं कि यूरोपियन मित्रों को सन्तोष करा सकने जैसा सर्व-सम्मत सुख मार्ग निकालने के सम्बन्ध में मैं निराश नहीं हुआ हूं। मैं समझता हूं जिस बातचीत में भाग लेने का मुझे सौभाग्य मिला था वह अब भी जारी रहने वाली है। मेरी उपस्थिति की आवश्यकता होगी तो इस छोटी समिति की बैठक में मैं अब भी हाजिर रहूंगा। इसे बढ़ाकर इसका वातचीतपन कम करने और इसका सर्व-सम्मत आधार खोज निकालने का ही विचार है।

मैं फिर कहता हूं कि जहां तक मैं समझ सका हूं मैं ऐसी कोई तफसीलवार योजना का विचार नहीं कर सकता जो विधान में शामिल की जा सके। विधान में तो इसके जैसा कोई सूत्र ही दाखिल हो सकता है और वही सब अधिकारों का आधार माना जा सकता है।

आप देखेंगे कि इसमें सरकारी तन्त्र द्वारा कुछ किये जाने की कल्पना नहीं है। संघ-न्यायालय और सर्वोच्च-न्यायालय-सम्बन्धी अपनी व्याख्या में प्रकट कर चुका हूं। मेरे लिए संघ-न्यायालय ही सर्वोच्च न्यायालय है यही अपील का अन्तिम न्यायालय है, जिसके आगे कोई भी अपील न हो सकेगी। यही मेरी प्रिवी कौंसिल है और यही स्वतन्त्रता का आधार-स्तम्भ। यह वह न्यायालय है जहां सब व्यक्ति जरा भी

९

अर्थ

श्रीमन्, इस महत्त्वपूर्ण विषय पर दिये हुए आपके (लार्ड पीलके) व्याख्यान को मैंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक और सम्मानसहित सुना। इस सम्बन्ध में मैंने भारतकी संघ-विधानात्मक समिति की रिपोर्ट के वे पैरे जो आर्थिक समस्या के ऊपर लिखे गये हैं, पढ़े। मेरे विचार में वे पैरे १८, १९ और २० हैं। मुझको यह मत प्रकट करने में अत्यन्त खेद है कि मैं इन पैरों में बतलाये गये प्रतिबन्धों से सहमत नहीं हूँ। जबतक कि हम ठीक तौर पर अपने आर्थिक बोझ को नहीं पाल पावे तबतक मेरी स्थिति और मैं समझता हूँ कि हम सबकी स्थिति अति कठिन होगी।

मैं अब और अधिक साफ-साफ कहता हूँ कि यदि 'सेना' एक रक्षित विषय समझी जायगी तो मैं एक दृष्टिकोण से विचार करूँगा

राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक व्यक्ति के स्वामित्व अथवा मालिकाना अधिकार की जाँच करेगी और यदि ऐसा हो तो यह मालिकाना अधिकार किसी खास विचार के अन्दर मिला होना चाहिए या नहीं? इस अधिकार की जाँच के लिए वह कैसा तन्त्र स्थापित करना चाहते हैं, वे कुछ मुआवजा देना चाहेंगे अथवा राष्ट्रीय सरकार स्वयं अथवा बहुसंख्यक के विचार के अनुसार जिस मिल्कियत को अनुचित रूप से प्राप्त की हुई समझेगी, उसे कब्जा कर लेगी।

गांधीजी—जहाँ तक मैं समझता हूँ यह काम सरकारी तन्त्र द्वारा न होगा, जो कुछ भी होगा पूरे न्याय होगा। न्यायालय द्वारा ही होगा।

सर तेजबहादुर सप्रू—वह न्यायालय कैसा होगा?

गांधीजी—अभी इस समय तो मैंने किसी मर्यादा का विचार नहीं

और यदि 'धर्म' हस्तान्तरित विषय समझी जायगी तो मैं दूसरे दृष्टि-कोण से विचार करूँगा। अपनी राय प्रकट करने में एक भारी कठिनाई यह भी है कि महासभा का यह दृढ़ मत है कि भावी सरकार को जो कर्ज़ अपने ऊपर लेना पड़ेगा उसकी पक्षपात-रहित जाँच-पड़ताल की जाय।

चार पक्षपात-रहित सदस्यों द्वारा तैयार की हुई मेरे पास एक रिपोर्ट है। उनमें से दो तो बम्बई की हाईकोर्ट के पुराने एडवोकेट-जनरल हैं, मेरा अभिप्राय श्री बहादुरजी तथा श्री भूलाभाई देसाई से है। तीसरे विचारक या उस कमेटी के सदस्य प्रोफ़ेसर शाह हैं, जो अखिल भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए हैं और भारतीय अर्थशास्त्र की बहुत-सी बहुमूल्य पुस्तकों के रचयिता हैं। उस कमेटी के चौथे सदस्य श्री कुमारप्पा हैं, जिन्होंने यूरोप की उपाधियाँ प्राप्त की हैं और जिनकी अर्थ-विभाग पर दी गई रायें पर्याप्त मात्रा में मानी जाती हैं और प्रभावशाली समझी जाती हैं। इन चार महानुभावों ने एक भारी रिपोर्ट पेश की है जिसमें

किया है। मैं समझता हूँ कि अन्याय के विरुद्ध कोई मर्यादा नहीं है।

सर तेजबहादुर सप्रू—इसलिए आपकी राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत कोई भी मतनिष्ठा का हक सुरक्षित नहीं है न?

गांधीजी—हमारी राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत इन सब बातों का निर्णय अदालत करेगी और यदि इन बातों के सम्बन्ध में कोई अनुचित शंका होगी तो मैं समझता हूँ प्रत्येक उचित शंका का समाधान किया जा सकना सम्भव है। मुझे यह कहने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि साधारणतः यह स्वीकार कर लिया जाने योग्य है जहाँ यह सिद्ध हो कि अधिकार न्यायपूर्वक प्राप्त किये गये हैं, अदालतों को इन अधिकारों की जाँच भी पूरी होनी चाहिए। मैं अतः शासन-सूत्र को हाथ में लेते समय यह नहीं कहूँगा कि एक भी अधिकार अथवा एक भी मालिकी के स्वत्व की जाँच न करूँगा।

इन्होंने जैसा कि मैं कहता हूँ पक्षपात-रहित जाँच के लिए सिफारिश की है। इस रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि बहुत-सा कर्ज़ा वास्तव में भारत का नहीं है।

इस सम्बन्ध में मैं अतिसम्मान सहित यह बतला देना चाहता हूँ कि महासभा ने यह कभी नहीं कहा है जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है कि वह राष्ट्रीय कर्ज़ों की एक कौड़ी तक अस्वीकार करती है। महासभा ने जो-कुछ कहा है वह यही है कि कुछ कर्ज़ा जो भारत का समझा जाता है भारत पर नहीं मढ़ा जाना चाहिए; परन्तु ब्रिटेन को वह कर्ज़ा देना चाहिए। इन सब कर्ज़ों की एक विवेचनापूर्ण जाँच इस रिपोर्ट में मिल सकती है। उन बातों का पाठ करके मैं इस समिति को थकाना नहीं चाहता। इन दो भागों का जो लोग भलीभाँति अध्ययन करना चाहें वे इस अध्ययन से बहुत लाभ उठा सकते हैं और कदाचित उनको पता लगेगा कि कर्ज़ का कुछ भाग भारत के ऊपर नहीं मढ़ा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में मैं समझता हूँ कि यदि प्रत्येक अपनी वास्तविक स्थिति समझे तो एक निश्चित पत्र देना सम्भव है। परन्तु यहाँ मैं यह बतलाने का साहस करता हूँ कि संघ-विधायक समिति के १५ १८ और २ पैरों में जिन प्रतिबन्धों अथवा संरक्षणों की ओर इशारा किया गया है, वे भारत को आगे बढ़ाने में सहायक होने के बजाय प्रत्येक कदम पर उसकी उन्नति के बाधक ही होंगे।

श्रीमन्, आपने कहा था कि भारतीय मन्त्रियों में विश्वास की कमी का प्रश्न मेरे सम्मुख उपस्थित नहीं है। इसके विपरीत आपको यह आशा थी कि भारतीय मन्त्री दूसरे मन्त्रियों के समान ही भली-भाँति कार्य करेंगे; परन्तु भारत की सीमा के बाहर भारत की साख (Credit) न आपका मतलब था। आपका यह भी मतलब था कि यदि बताये हुए संरक्षण नहीं रखे गये तो वे पूँजी लगाने वाले, जो भारत में पूँजी लगाते थे और उचित ब्याज पर भारत को रुपया देते थे सन्तुष्ट नहीं होंगे। यदि मुझको ठीक याद है तो आपने यह कहा था कि यदि यहाँ

से भारत में रुपया लगाया गया अथवा रुपया भेजा गया तो यह नहीं समझना चाहिए कि यह रुपया भारत के हित में नहीं लगा है।

यदि मुझको ठीक-ठीक याद है तो आपने इन शब्दों का प्रयोग किया था 'स्पष्ट ही यह (व्यय) भारत का हितकर होगा।' मैं इस सम्बन्ध में किसी दृष्टान्त की प्रतीक्षा कर रहा था परन्तु नि:सन्देह आपने यह समझ लिया कि हम इन मामलों को या ऐसे उदाहरणों को जानते हैं। जबकि आप भाषण दे रहे थे तब इस बात के विपरीत कुछ दृष्टान्त मुझे मालूम थे। मैंने अपने मन में कहा कि मेरे अनुभव में ही कुछ दृष्टान्त ऐसे आये हैं, जिनसे मैं यह प्रमाणित कर सकता हूं कि इन दृष्टान्तों में ब्रिटेन और भारत के हित एक-से नहीं थे दोनों के हित एक-दूसरे से विपरीत थे और इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि ब्रिटेन से लिया गया ऋण सर्वदा भारत के लिए हितकारी था।

उदाहरण के तौर पर बहुत से युद्धों को ही ले लीजिए। अफ़गानिस्तान के युद्धों को ही देखिए। जबकि मैं युवक था मैंने स्वर्गीय सर जॉन के का लिखा हुआ अफ़ग़ान-युद्धों का हाल बड़े कौतूहल से पढ़ा था और मेरी स्मृति में यह बात भलीभांति अंकित हो गई है कि इनमें से बहुत से युद्ध भारत के लिए हितकर नहीं थे। इतना ही नहीं गवर्नर जनरल ने इन युद्धों में प्रमाद से काम किया था। स्व. दादाभाई नौरोजी ने हम नवयुवकों को यह सिखाया था कि भारत में अंग्रेजों की धर्म-नीति का इतिहास वहां रक्त-शोषक नहीं है वहां मनुष्यतापूर्ण और प्रमाद से भरा हुआ है।

लार्ड चान्सलर ने यह चेतावनी दी थी और इस चेतावनी पर आपने ही जोर दिया था कि वर्तमान समय में आर्थिक समस्या बड़ी नाजुक है और इस कारण हममें से जो इस बहस में भाग लें उनको अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, और बुरी रीति से इस विषय में प्रवेश नहीं करना चाहिए जिससे जिन कठिनाइयों का अर्थमन्त्री को सामना करना पड़ रहा है उनमें बढ़ती ही जाय। इस कारण मैं विस्तार में

नहीं पाऊंगा परन्तु विनिमय दर के बढ़ाने के बारे में एक बात कहे बिना मैं नहीं रह सकता। मेरा अभिप्राय उस समय से है जब रुपये को १ शि ४ पेंस से बढ़ा कर १ शि ६ पेंस कर दिया गया था। यद्यपि उन भारतीयों से जिनका महासभा से कुछ सम्बन्ध नहीं था, इस बात का एकमत से विरोध किया था। वे सब अपना मत प्रकट करने मे स्वतन्त्र थे। उनमें से कुछ अर्थ-शास्त्र में बढ़े थे और जो कुछ वे कहते थे उसको भली प्रकार समझते भी थे। यहाँ फिर यही पता चलता है कि विदेश के हित के लिए भारत का हित बचा दिया गया। इस बात के जानने के लिए किसी निपुण मनुष्य की आवश्यकता नहीं होती कि मूल्य में गिरा हुआ रुपया किसानों के लिए सदा हितकारी होता है या नियमानुसार हितकारी होगा। मुझपर अर्थ-शास्त्रियों के यह स्वीकार करने का बहुत असर हुआ था कि यदि रुपया विलायत के नोट (Sterling) के साथ न जोड़ा जाकर स्वयं अपने ऊपर छोड़ दिया जाय तो इससे किसानों को बहुत लाभ होगा। वे अन्तिम छोर की ओर था एक से और यह समझते थे कि यदि रुपया स्वयं अपनी दर स्थापित करने के लिए छोड़ दिया गया और गिरते-गिरते अपनी वास्तविक कीमत अर्थात् ८ या ७ पेंस पर आ गया तो भारत के लिए यह एक दुर्घटना होगी। व्यक्तिगत मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि इससे भारतीय कृषक को किसी प्रकार की हानि पहुँचेगी।

ऐसी बातों में से उन सरकारों को जो भारतीय धर्ममन्त्री के अपना उत्तरदायित्व पालन करने के कार्य में रुकावट डालेंगे नहीं टाल सकता और यह उत्तरदायित्व पूर्णतया प्रजा के हित में होगा।

इस समिति का ध्यान मुझे एक बात की ओर और आकर्षित करना है। लार्ड रीडिंग और आपने यद्यपि सावधानी के लिए कह दिया है तो भी मुझको यह अनुभव होता है कि यदि भारतीय अर्थ-विभाग का ठीक प्रबन्ध भारत के हित में हो तो विदेश के बाजार में—अर्थात् लन्दन में—दर न इतनी ऊँची-नीची न हो। इसके लिए मैं कारण बताता हूँ।

जब सर डैनियल हैमिल्टन के लेखों से मैं पहले-पहल परिचित हुआ तो मैं कुछ आशंका और हिचकिचाहट से उनके पास पहुँचा। भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता था। मेरे लिए यह विषय बिलकुल नया था। परन्तु उन्होंने उत्साह के साथ मुझे उन पर्चों का पढ़ने के लिए, जो वे मुझे लगातार भेजते थे खूब जोर दिया। जैसा कि हम सब जानते हैं, उनकी भारत के साथ बहुत दिलचस्पी है। वे महत्वपूर्ण पदों पर भी रहे हैं और स्वयं एक खास अर्थशास्त्री हैं। वह आजकल अपने प्रस्तावित पथानुसार प्रयोग कर रहे हैं और जो लोग भारतीय अर्थ-समस्या को उनके दृष्टिकोण से समझना चाहेंगे उन सब के सामने उन्होंने एक प्रमाणोत्पादक विचार रख दिया है। वह कहते हैं कि भारत को सोने के माप की चाँदी के माप की या और किसी धातु के माप की आवश्यकता नहीं है। भारत के पास एक स्वयं अपनी ही धातु है और वह धातु उनके धनमिमय कराओं अमिको के रूप में है। वह सत्य है कि भारत के आर्थिक सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार अभी तक दिवालिया नहीं हुई है और अभी तक सब भुगतान करती रही है परन्तु यह सब किस कीमत पर हुआ है? यह कृषक को हानि पहुँचा कर ही हुआ है, कृषक से सब छीन लिया गया है। यदि आर्थिक-समस्या को अर्थों में समझने के बजाय अधिकारी-गण साधारण के रूप में समझते तो मेरी राय राय में वह भारत के मामले का प्रबन्ध अबतक की अपेक्षा कहीं अच्छा कर सकते। तब उनको विदेशी बाजार की शरण नहीं जाना पड़ता। प्रत्येक इस बात को मानता है और सब व अर्थशास्त्रियों के यह कहा है कि सदा इस मैं ने भी वर्षों में व्यापार का शेष भारत के अनुकूल रहता है।

यद्यपि जब कभी भारत का व्यापार साल में आठ आने या दस आने के बराबर ही रह जाता है तब भी व्यापार भारत के अनुकूल ही रहता है। उदार प्रकृति पृथिवी-माता ने भारत अपना ऋण चुकाने के लिए और अपनी आवश्यक आयात से भी अधिक पैदा करता है।

यदि यह सत्य है और मैं कहता हूं कि यह सत्य है तो भारत के समान देश का विदेशी पूंजीपति के सामने झुकना ठीक नहीं है। भारत को विदेशी पूंजीपति के सामने झुकाया गया है कारण कि एक बहुत बड़े परिमाण में 'होम चार्जेस' के रूप में भारत से धन बाहर गया है और भारत की रक्षा में भीषण व्यय किया गया है। इन ऋणों के चुकाने में भारत सर्वथा असमर्थ है; परन्तु यह सब एक ऐसी नीति के चलते हुये है, जिसकी स्वनामधन्य कमिश्नर स्व. रमेशचन्द्र दत्त ने बहुत अच्छी तरह निन्दा की थी। मुझको मालूम है इसी सम्बन्ध में स्व. लार्ड कर्जन से उनका विवाद हो गया था और हम भारतीय इस नतीजे पर पहुंचे कि रमेशचन्द्र दत्त ही ठीक थे।

परन्तु मैं एक कदम और आगे बढ़ना चाहता हूं। यह तो सबको मालूम है कि भारतीय कृषक साल में छः महीने बेकार रहते हैं। यदि ब्रिटिश सरकार इस बात का प्रबन्ध कर दे कि वर्ष में छः महीने ये लोग बेकार न रहें तो सोचो कि कितना धन पैदा किया जा सकता है। तो फिर क्या हमको विदेशी बाजार की ओर झुकने की आवश्यकता पड़ेगी? मुझ साधारण मनुष्य को—जो सर्वसाधारण का ही विचार रखता है और जो वही अनुभव करना चाहता है जैसा कि सामान्य लोग—समस्त आर्थिक समस्या इसी रूप में दिखाई पड़ती है। वे कहते हैं कि हमारे पास अधिक धन नहीं है इस कारण हम किसी विदेशी पूंजी को नहीं लेना चाहते। जबतक हम श्रम करते हैं, तबतक हमारे श्रम से पैदा हुई वस्तुएं संसार चाहेगा और यह सत्य है कि समस्त संसार हमारे श्रम से पैदा हुई चीजें चाहता है। हम वही चीजें पैदा करेंगे जिन्हें संसार स्वयं खुशी से लेगा। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत की ऐसी ही दशा रही है। इस कारण मैं उस डर का अनुभव नहीं करता जो भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध में आपने बताया है। मेरी राय में जबतक हम अपने द्वार-रक्षकों पर पूर्ण नियन्त्रण और निर्णय अथवा बजट अपने काबू में न रक्खेंगे तबतक हम अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकेंगे और

ऐसे भार को उत्तरदायित्वपूर्ण कहना अनुपयुक्त होगा।

वर्तमान समय में मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं अपने संरक्षण बताऊं। अपने संरक्षणों को मैं उस समय तक नहीं बता सकता जबतक मैं यह न जान जाऊं कि भारतीय राष्ट्र का पूर्ण जिम्मेवारी तथा सेना और सिविल सर्विस पर पूर्ण नियन्त्रण मिलना और भारत अपनी आवश्यकतानुसार सिविलियनों को तथा सिपाहियों को उन्हीं शर्तों पर रखेगा जो भारत जैसे दरिद्र राष्ट्र के लिए उपयुक्त होगी। जबतक मैं इन सब बातों को न जान जाऊं तबतक मेरे लिए संरक्षण बताना प्रायः असम्भव है। जबतक कि कोई भारत की इस योग्यता में कि वह अपना भार स्वयं उठाने के योग्य है और अपना काम शान्ति से चला सकता है अविश्वास न करे तबतक वास्तव में इन सब बातों पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि संरक्षणों की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में केवल एक ही उत्तर जो मैं देख सकता हूं यह हो सकता है कि ज्योंही हम कार्यभार अपने ऊपर लेंगे त्योंही बड़ी अव्यवस्थता और विप्लव फैल जायगा। यदि अंग्रेजों को यही डर है तो हमारे और उनके क्षेत्र भिन्न हैं। हम उत्तरदायित्व लेते हैं और मांगते हैं, क्योंकि हमें विश्वास है कि हम अपना शासन अच्छी प्रकार चला लेंगे और मैं तो समझता हूं कि अंग्रेज-शासकों की अपेक्षा हम अपना शासन अधिक अच्छी तरह करेंगे। इसका कारण यह नहीं है कि वे अयोग्य हैं। मैं यह मानने को तैयार हूं कि अंग्रेज हमसे अधिक योग्य और अधिक संगठन-शक्ति रखने वाले हैं, जिसकी शिक्षा हमको उनके पैरों के नीचे रहकर लेनी है। परन्तु हमारे पास एक बात है और वह यह कि हम अपने देश को और अपने लोगों को जानते हैं और इस कारण हम अपनी सरकार सस्ते में चला सकते हैं। जब हमारी है दूर रहने की हम कोशिश करेंगे क्योंकि हमारी आकांक्षाएं साम्राज्यवादी नहीं हैं। इस कारण हम पड़ोसियों से लड़ना और विश्व-शान्ति में युद्ध नहीं करेंगे, वरन् हम मित्र भाव

स्थापित करेंगे और उनको हमसे डरने की कोई बात नहीं होगी।

भारत की धार्मिक समस्या को सोचते हुए मेरे मन में यही भावना उपस्थित होती है। अतः आपको मालूम होगा कि मेरी समस्या में भारतीय धर्म-समस्या इतनी बड़ी या इतनी भयानक नहीं है जितना कि आप लार्ड लोथियन अथवा मंत्रिमंडल-मंत्री जिनसे मुझे इस प्रश्न पर बहस करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इस (धर्म-समस्या) को अपने मन में समझते हैं। अतः ऊपर बताये हुए कारणों से मैं सम्मान सहित यह कहना चाहता हूँ कि इन संरक्षणों को और ब्रिटिश जनता और ग्रेट ब्रिटेन के जिम्मेदार लोगों के कर्ज को मंजूर कर लेना मेरे लिए संभव नहीं है।

राष्ट्रीय सरकार जिन कर्जों को अपने सिर पर लेगी उनकी जमानत ठीक उसी तरह की होगी जैसी कि एक राष्ट्र उपस्थित कर सकता है। परन्तु इन-पैराग्राफों में जैसी जमानतों के लिए लिखा है वैसी मेरी राय में नहीं दी जा सकती। निःसन्देह कुछ भाग ऐसा है जिसको हमें अपने ऊपर लेना पड़ेगा और ग्रेट ब्रिटेन को चुकाना पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाय कि हमने असावधानी से काम किया तो कागज पर लिखी हुई शर्तों का क्या मूल्य रह जायगा? अथवा मान लो दुर्भाग्य से उस समय से जब कि भारत अपना शासन अपने हाथ में ले बहुत-न हो वर्ष एक-के-बाद-एक आवें तो मैं नहीं समझता हूँ कि कोई संरक्षण भारत से रुपया छीनने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। ऐसी आपत्तिजनक परिस्थितियों के महत्त्व कारणों से किसी भी राष्ट्रीय सरकार को जमानत देना सम्भव नहीं होगा।

मैं अपना भाषण को अत्यन्त दुःख के साथ खतम करता हूँ क्योंकि मुझे इतने धार्मिक अधिकारियों का, जिनको भारत के मामलों का अनुभव है और अपने उन देशवासियों का जो गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुए हैं विरोध करना पड़ता है। परन्तु यदि महासभा का प्रतिनिधि होते हुए मुझको अपना कर्तव्य पालन करना है तो किसी

जैसा मुझे सयोगवश मालूम हुआ है कुछ ही दिन से होता गया है उन्होंने अपने दूसरे मित्रों और साथियों की तरह मुझपर भी यदि मैं भी अपने को उनका साथी समझ लू विश्वास करने की कृपा की है और अपने दिल की बात कही है।

सर तेज बहादुर उच्च सरकारी पदो पर रह चुके है। उन्हें शासन सम्बन्धी मामलों का बहुत अनुभव भी है। उसके आधार पर उन्होंने हम प्रान्तीय स्वराज्य मांगकारी खतरे से खबरदार रहने की चेतावनी दी है। मै बहुधा मूर्ख बन बैठता हू इसलिए उन्होने खास तौर पर मुझे जल्म में रखकर यह चेतावनी दी है। इसका कारण यह है कि मैंने प्रान्तीय स्वराज्य के सवाल पर कई अंग्रेज दोस्तों से—इस देश के जिम्मेदार सार्वजनिक व्यक्तियो से—चर्चा करने का साहस किया है। इसकी खबर सर तेजबहादुर को मिल गई थी और इसलिए उन्होंने मुझे काफी सचेत कर दिया है। यही कारण है कि हस्ताक्षर करने वालों म आप मेरा भी नाम देखते है। परन्तु अध्यक्ष महोदय मैंने हस्ताक्षर इस कागज पर नही किये है जो आपके सामने पेश किया गया है बल्कि वैसे ही दूसरे पत्र पर किये है जो इस दिन पहले अखबारो को भेजा गया है और प्रधान मन्त्री के नाम दिया गया है। जो बात मैं कहां कहता हूं यही मैने उनसे कही थी कि जसे ही अक्सर रास्तो से सही मैं और उनके बाद मे बोलने वाले दूसरे लोग तथा मैं एक ही नतीजे पर पहुचे है। 'जहा देवताओ को पैर रखते भी डर लगता है वहां मूर्ख घुस पड़ते है'। शासन का कोई अनुभव न होते हुए भी मैंने सोचा कि यदि मेरी कल्पना मे जो प्रान्तीय स्वराज्य है वही मिलता हो तो मैं इस कल को हाथ में लेकर और उसे टटोल कर क्यों न देख लू कि यह चीज वास्तव मे मेरे काम की है भी या नही ? मुझे अपने से भिन्न नीति रखने वाले मित्रो से मिलकर उन्ही की विचारधारा में बसकर, उनकी कठिनाइयां भी जानने का शौक है। मै यह भी सोचना चाहता हूं कि बा कुछ म लोग दे रहे है उसमे शायद आगे चलकर वही चीज मिल

जाय जो मैं चाहता हूँ। इसी भावना से और इसी अर्थ में मैंने प्रान्तीय स्वराज्य पर भी विचार करने का साहस किया था। परन्तु वादविवाद से मुझे तुरन्त पता लग गया कि प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ जो वे करते हैं वह वही अर्थ नहीं है जो मैं समझता हूँ। इसलिए मैंने अपने मित्रों से भी कह दिया कि वे मुझे अकेला छोड़ दें तो भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा क्योंकि न तो प्रान्तीय स्वराज्य के मूर्खतापूर्ण विचार से और न देश के लिए कुछ भी मैं मरने की आतुरता से ही मैं देश के हितों का बलिदान करने जाता हूँ। मुझे चिन्ता है तो सिर्फ इतनी-सी कि जब मैं सम्पूर्ण सच्चे हृदय से इतने कोसों से आया हूँ, जब सरकार और इस परिषद् के साथ जी-जान से सहयोग करने का मेरा पूरा इरादा रहा है और जब मैंने मन वचन और कर्म से सहयोग की भावना रखी है तो अपनी ओर से कोई बात उठा न रखूँ। इसलिए मैंने खतरे की सीमा में घुसकर भी प्रान्तीय स्वराज्य की बात करने से परहेज नहीं किया है। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि आप अथवा ब्रिटिश-मंत्रिमण्डल भारतवर्ष को उतना प्रान्तीय स्वराज्य नहीं देना चाहते जो मेरे जैसी मनोवृत्ति के आदमी को मंजूर कर सके जिससे महासभा का समाधान हो जाय और जिसे स्वीकार करने को महासभा राजी हो जाय फिर भले ही केंद्रीय दायित्व मिलने में देर लगे।

यहाँ इस समिति का थोड़ा समय मैं एक आक्षेप उठा कर भी अपनी बात साफ समझा देना चाहता हूँ क्योंकि इस मामले में भी मेरा तर्क बहुत भिन्न प्रकार का है और मैं हृदय से चाहता हूँ कि मेरी बात को गलत न समझा जाय। अब मैं एक उदाहरण देता हूँ। बंगाल को ही लीजिए। यह प्रान्त भारतवर्ष का एक ऐसा प्रान्त है जिसमें गहरी अशान्ति है। मैं जानता हूँ बंगाल में एक क्रियाशील हिंसावादी दल विद्यमान है। आप यह भी सबको मालूम होना चाहिए कि मेरे दिल में हिंसावादी दल के प्रति किसी भी प्रकार से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। मैं बरसों से मानता आया हूँ कि हिंसात्मक गुप्तदल के लिए

बुरे-से-बुरा उपाय है भारतवर्ष के लिए तो खास तौर पर घातक है क्योंकि इसका बीज भारतभूमि में फूल-फल सकता ही नहीं। मेरा विश्वास है कि जो भारतीय युवक इस प्रकार के कार्मों को सच्चा समझ कर अपनी जानें दे रहे हैं वे अपने प्राण बिलकुल व्यर्थ गंवा रहे हैं और जिस स्थान पर हम सब लोग पहुंचना चाहते हैं उस स्थान के एक अंगुल नजदीक भी वे देश को नहीं ले जा रहे हैं।

मुझे इन सब बातों का यकीन है। परन्तु यकीन होने पर भी मान लीजिए कि बंगाल को आज यदि प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होता तो बंगाल क्या करता? बंगाल सारे-के-सारे नजरबन्द कैदियों को छोड़ देता। बंगाल—अर्थात् स्वायत्त-शासन-भोगी बंगाल हिंसावादियों का पीछा न करता, प्रत्युत उनतक पहुंच कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता। मुझे विश्वास है कि उनके कमरों में बैठ कर मैं बंगाल से हिंसावाद का सफाया कर सकता हूं।

परन्तु जिस सत्य को मैं अपने भीतर देखता हूं उसे प्रकट कर देने के लिए मैं एक कदम और आगे बढ़ता हूं। यदि बंगाल स्वायत्त-शासन भोगी होता तो अवश्य वह स्वराज ही स्वराज्य में बंगाल से हिंसावाद को मिटा सकता था। इसका कारण यह है कि ये हिंसावादी मूर्खतावश यह समझते हैं कि उनके इन कृत्यों से ही स्वतन्त्रता जल्दी-से-जल्दी प्राप्त हो गी। परन्तु जब वही स्वतन्त्रता बंगाल को दूसरी तरह से मिल जाती तो फिर हिंसावाद के लिए गुंजायश ही कहां रह जायगी?

आज एक हजार युवक ऐसे हैं जिनमें से कुछ के लिए मैं अवश्य पूर्वक कह सकता हूं कि हिंसावाद से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। फिर भी ये हजार-के-हजार युवक मुकदमा चलाये बिना और अपराध साबित हुए बिना गिरफ्तार कर लिये गये हैं। यहां एक सिटी-जांच का सम्बन्ध है, श्री सेनगुप्ता यहां मौजूद हैं। ये कलकत्ता के भार्ड मेयर, बंगाल व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और बंगाल प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। वे मेरे पास एक रिपोर्ट लाये हैं। इस रिपोर्ट पर बंगाल

के सभी वर्गों के लोगों के हस्ताक्षर हैं। इसे पढ़कर दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। इसका सार यह है कि चिटगांव में भी आयरलैण्ड के से किन्तु उनसे घटिया दर्जे के अंधाधुन्ध अत्याचारों की पुनरावृत्ति की गई । और यह भी बात नहीं कि चिटगांव भारतवर्ष में कोई ऐसी-वैसी जगह हो।

हमें अब यह भी मालूम हो गया है कि कलकत्ता में झंडा प्रदर्शन किया गया उस समय वहां भारी सैनिक शक्ति एकत्र की गई और उसे शहर के दस प्रधान बाजारों में घुमाया गया।

ये सब किसके लाभ से किया गया और इसका उपयोग क्या ? क्या इससे हिंसावादी डर जायेंगे ? मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वे नहीं डरेंगे। तो फिर क्या इससे महासभा वाले सविनय-भंग से विमुख हो जायेंगे ? यह भी नहीं होने का। महासभा वाले तो इसके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। यही तो उनकी शक्ति का चिह्न है । उन्होंने इस प्रकार के कष्ट सहन करने का संकल्प कर लिया है। इस कारण वे इन बातों से डर जाने वाले नहीं हैं। ऐसे प्रदर्शनों पर हमारे बच्चे हंसते । हम उन्हें यह सिखाना भी चाहते हैं कि वे न डरा करें—तोप बन्दूक और हवाई जहाज इत्यादि से भयभीत न हुआ करें।

अब आप समझ गये होंगे कि प्रान्तीय स्वराज्य की मेरी क्या कल्पना है । ये सब बातें उस दशा में असम्भव हो जायंगी। न तो उस समय मैं किसी एक भी सिपाही को बंगाल प्रान्त में घुसने दूंगा और न एक भी पैसा ऐसी फ़ौज पर खर्च होने दूंगा जिसपर मेरा नियन्त्रण न हो। इस प्रकार के प्रान्तीय स्वराज्य में तो आप बंगाल की ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं कर सकते कि मैं सब नजरबंदों को मुक्त कर दूं और बंगाल के काले कानून रद्द कर दूं। यदि यही प्रान्तीय स्वराज्य है तो बंगाल में तो वैसी ही पूर्ण स्वाधीनता स्थापित हो जाती है जैसी मैंने नैटाल में विकसित होते देखी है। वह छोटा-सा उपनिवेश है परन्तु उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था उसकी

अपनी स्वतंत्र सेना आदि भी। आप बंगाल या अन्य प्रान्तों को इस प्रकार का स्वराज्य नहीं देना चाहते। आप तो चाहते हैं कि केन्द्रस्थ सरकार ही शासन नियन्त्रण आदि का काम भी करती रहे; परन्तु यह मेरी कल्पना का प्रान्तीय स्वराज्य नहीं है। इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि यदि आप मुझे सच्चा प्रान्तीय स्वराज्य देना चाहते हों तो उसपर मैं विचार करने को तैयार हूँ। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि वह स्वराज्य नहीं आ रहा है। यदि वह आनेवाला होता तो हमें इतनी लम्बी-चौड़ी कार्रवाई न करनी पड़ती और हमारा काम किसी दूसरे ही ढंग से चलता।

परन्तु मुझे एक बात का सचमुच और भी अधिक दुख है। हम सब यहाँ एक ही उद्देश्य से आये हैं। मुझे विशेषतः इस समझौते के द्वारा लाया गया है जिसमें यह स्पष्ट लिखा है कि मैं केन्द्रीय शासन में सच्चे उत्तरदायित्व—सम्पूर्ण दायित्व वाला संघ-शासन जिसमें संरक्षण हों किन्तु जो भारत के लिए हितकारी हों विचार करने और मैंने आ रहा हूँ। मैंने समय-असमय कहा है कि जो भी संरक्षण आवश्यक हों उसपर मैं विचार करूँगा। मैं अध्यापक लीस-स्मिथ अथवा अन्य किसी के इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि इस विधान-रचना के काम में इतने वर्ष—तीन वर्ष—लगने चाहिए। उनके कथन से प्रान्तीय स्वराज्य को १८ मास लगेंगे। मेरी मूर्खता कहती है कि इस दीर्घकाल की जरूरत नहीं। जब लोग संकल्प करलें पार्लमिण्ट संकल्प करले मन्त्रीमण्डल संकल्प करलें और यहाँ का लोकमत संकल्प कर ले तो इन बातों में देर नहीं लगा करती। मैंने देखा है कि जब एकचित्त से विचार किया गया है तो इन बातों में समय नहीं लगा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि इस मामले में एकचित्त से विचार नहीं हो रहा है। अलग-अलग विभाग अपने-अपने ढंग से और कभी शायद विरोधी दिशाओं में काम कर रहे हैं। जब ऐसी बात है तो मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि इस वादविवाद के पश्चात् भी केन्द्रस्थ दायित्व मिलना तो दूर रहा इस परिषद् से कोई दूसरा सम्पूर्ण

परिणाम भी नहीं निकलने वाला है। मुझे यह देखकर पीड़ा होती है, आघात पहुँचता है कि ब्रिटिश मन्त्रियों का राष्ट्र का और यहाँ आये हुए इन सब भारतीयों का इतना बहुमूल्य समय व्यर्थ गया। मुझे भय है कि इस प्राणवायु की पिचकारी से भी कोई लाभ नहीं होगा। मैं यह नहीं कहता कि और कुछ नहीं तो प्रान्तीय स्वराज्य ही हमारे सिर पर बोझ ही दिया जायगा।

मुझ इस परिणाम का तो वास्तव में भय नहीं है। मुझे भय तो इससे कहीं अधिक भयानक चीज का है। वह यह कि सिवाय भयंकर दमन के भारत के पल्ले और कुछ भी पड़ने वाला नहीं है। मुझे उस दमन की फ़रियाद नहीं है। दमन से तो हमारा भला ही होगा। यदि दमन ठीक समय पर हो तो मैं तो उसे भी इस परिषद् का बहुत बढ़िया नतीजा समझूँगा। जो देश अपने ध्येय की ओर निश्चित संकल्प के साथ बढ़ रहा हो ऐसे किसी भी देश की दमन से कभी कोई हानि नहीं हुई। ऐसे दमन से सचमुच प्राणवायु का संचार होता है अध्यापक गोल्ड-स्मिथ की पिचकारी से नहीं।

परन्तु मुझे डर इस बात का है कि जिस पतले धागे से मैंने पुन-अंग्रेजों और ब्रिटिश-मन्त्रियों से सहयोग का नाता बाँधा था वह टूटता दिखाई देता है। मुझे फिर से अपने-आपको कट्टर असहयोगी और सविनय अवज्ञाकारी घोषित करना पड़ेगा। मुझे यहाँ के करोड़ों मनुष्यों को असहयोग और आक्रमण का सन्देश फिर से देना पड़ेगा। भले ही भारत पर कितने ही वायुयान मडरायें और भारत में कितनी ही सैनिक मोटरें क्यों न भेज दी जायें। इनसे कुछ होना-जाना नहीं है। आपको मालूम नहीं है कि आज नन्हे-नन्हे बच्चों पर भी इन चीजों का कोई असर नहीं होता। हम उन्हें सिखाते हैं कि जब तुम्हारे चारों ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम इतमिनान होकर नाचो मानो बताशे छूट रहे हैं। हम उन्हें देश के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाते हैं। मैं निराश नहीं हूँ। मैं नहीं समझता कि यहां कुछ न हुआ तो देश में अराजकता फैल जायगी। मेरा यह

खयाल नही है। जबतक कांग्रेस शुद्ध रहेगी और भारत की चारों दिशाओं में अहिंसा का बोलबाला रहेगा तबतक अराजकता नहीं होगी। मुझे बहुधा कहा जाता है कि हिंसावाद की जिम्मेवारी कांग्रेस के सिर पर है परन्तु मेरे पास इस बात के लिए प्रमाण है कि कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय ने ही अबतक हिंसात्मक शक्तियों को रोक रखा है। मुझे खेद है कि अबतक हमें पूरी सफलता नहीं मिली है परन्तु समय पाकर इसकी सफलता की आशा है। यह बात नहीं है कि हिंसावाद से भारत को स्वाधीनता मिल जायगी। मैं तो स्वतन्त्रता वैसी ही चाहता हूँ जैसी भी आयकर चाहते हैं बल्कि मैं उनसे अधिक सम्पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता हूँ। मैं सर्व-साधारण के लिए पूरी आजादी चाहता हूँ। मैं जानता हूँ हिंसावाद से सर्व-साधारण का कोई लाभ नहीं हो सकता। सर्व-साधारण मूक और निःशस्त्र है। उन्हें मारना नहीं आता। मैं व्यक्तियों की बात नही करता परन्तु भारत के सर्व-साधारण की मति इस दिशा में कभी नहीं रही।

जब मैं गरीबों का स्वराज्य चाहता हूं तो मुझे मालूम है कि हिंसावाद से कोई लाभ नही। अतः महासभा एक ओर तो ब्रिटिश सत्ता और उसकी ओर से कानून की आड़ में होने वाले हिंसावाद से लोहा लेगी और दूसरी ओर युवकों के गैर-कानूनी आतंकवाद का विरोध करेगी। मेरे खयाल में इन दोनो के बीच का रास्ता उस सहयोग के द्वार का था जो लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश राष्ट्र के तथा मेरे लिए खोला था। उन्होंने यह पुल बनाया और मैंने समझा कि उसपर से सकुशल पार हो जाऊंगा। मेरा रास्ता सुरक्षित था और मैं अपना सहयोग प्रदान करने को आ पहुंचा, परन्तु अध्यापक लीस-स्मिथ सर तेज बहादुर सप्रू और श्री शास्त्रीजी ने कुछ भी कहा हो उनके ध्यान में जो सीमित केन्द्रीय दायित्व है उससे मेरा समाधान नही होगा।

आप सब जानते हैं मैं तो ऐसा केन्द्रस्थ दायित्व चाहता हूं जिससे सेना और अर्थ का नियन्त्रण मेरे हाथ में आ जावे। मुझे मालूम है कि यह चीज मुझे यहां अभी नही मिलेगी और न कोई भी अंग्रेज आज यह

११
हमारी बात

मैं नहीं समझता कि इस समय मैं जो कुछ कहूँगा उससे प्रधान मण्डल के निर्णय पर कुछ असर पड़ना सम्भव है। बहुत करके वह निर्णय हो भी चुका है। लगभग एक पूरे द्वीप की स्वतन्त्रता का प्रश्न केवल बमीलों अथवा सलाह-मशविरे से कदाचित् ही सम्भव हो सकता है। सलाह-मशविरे का भी अपना हेतु होता है और वह भी अपना हिस्सा पूरा करता है किन्तु वह खास-खास अवस्थाओं में ही। बिना ऐसी अवस्था के सलाह-मशविरे से कुछ नतीजा नहीं निकलता। किन्तु मैं इन सब बातों में नहीं जाना चाहता। प्रधान-मन्त्री महोदय मैंने आपको इस परिषद् की प्रारम्भिक बैठक में जो पर्चे पढ़कर सुनाई थी यथासम्भव उनकी हद में ही रहना चाहता हूँ। इसलिए सबसे पहले तो मैं इस परिषद् के सामने पेश हुई रिपोर्टों के सम्बन्ध में ही दो शब्द कहूँगा। आप इन रिपोर्टों में देखेंगे कि अधिकांश में यह कहा गया है कि अमुक-अमुक बड़ी बहुसंख्या का मत है कुछ ने इसके विपरीत मत प्रदर्शित किया है इत्यादि। जिन पक्षों ने विरोधी मत दिया है उनके नाम नहीं दिये गये है। जब मैं भारत में था तब मैंने सुना था और मैं यहां आया तब मुझसे कहा गया था कि बहुसंख्यक के सामान्य नियम से कोई भी निर्णय न किया जायगा। और इस बात का उल्लेख मैं यहां यह शिकायत करने के लिए नहीं करता कि वे रिपोर्टें इस तरह तैयार की गई है, मानो सारा काम बहुमत के नियम से ही किया गया हो।

किन्तु इस बात का उल्लेख मुझे इसलिए करना पड़ा है कि इन अधिकांश रिपोर्टों में आप देखेंगे कि एक विरुद्ध मत लिखा गया है और अधिकांश जमहों में वह विरोध दुर्भाग्य से मेरा है। प्रतिनिधि-बन्धुओं की राय से मतभेद प्रकट करते हुए मुझे प्रसन्नता न हुई थी।

किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि मैं यह मतभेद प्रकट न करूँ तो मैं महासभा का सच्चा प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

एक बात और है जो मैं इस परिषद् के ध्यान में लाना चाहता हूँ और वह यह कि महासभा के इस मतभेद का क्या अर्थ है? संघ विधायक समिति की एक प्रारम्भिक बैठक में मैंने कहा था कि महासभा भारत की ८५ प्रतिशत से अधिक आबादी अर्थात् मूक श्रमिकवर्ग और अधपेट रहनेवाले करोड़ों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। किन्तु मैंने तो आगे जाकर यह भी कहा है कि यदि महाराजगण मुझे क्षमा करें, तो वह तो अपने सेवा के अधिकार से राजाओं की उसी तरह जमींदारों और शिक्षित-वर्ग की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मैं उस दावे को फिर पेश करता हूँ और इस समय उसपर विशेष जोर देना चाहता हूँ।

इस परिषद् के दूसरे सब पक्ष खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं। अकेली महासभा ही सारे भारत की और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। महासभा कोई सम्प्रदायिक संस्था नहीं है; किसी भी शकल या रूप में वह सब प्रकार की साम्प्रदायिकता की कट्टर शत्रु है। उसके मन में जाति रंग अथवा सम्प्रदाय का कोई भेद नहीं है; उसके द्वार सबके लिए खुले हैं। सम्भव है कि उसने ध्येय को सर्वव पूरा न किया हो। मैंने मनुष्य द्वारा संस्थापित एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी जिसने अपने ध्येय को सर्वव पूरा किया हो। मैं जानता हूँ कि कई बार महासभा असफल हुई है। उसके आलोचकों की जानकारी के अनुसार तो वह इससे भी अधिक बार असफल हुई होगी। किन्तु कट्टु-से-कट्टु आलोचक को यह तो स्वीकार करना ही होगा और उन्होंने स्वीकार किया भी है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा दिन-प्रति दिन विकसित होती जाने वाली संस्था है उसका सन्देश भारत के दूरातिदूर गाँवों में पहुँचाया गया है और अवसर दिये जाने पर वह देश के ७ गाँवों में रहनेवाली सर्व-साधारण

जनता पर के अपने प्रभाव का परिचय दे चुकी है।

और फिर भी मैं देखता हूं कि यहां महासभा को अनेक पक्षों में से एक पक्ष गिना जाता है। मैं इसकी परवाह नहीं करता मैं इसे महासभा के लिए कुछ आपत्ति-रूप नहीं मानता किन्तु जो कार्य करने के लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं उसके लिए आपत्तिकर अवश्य मानता हूं। मैं चाहता हूं कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों और ब्रिटिश-मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकता होता कि महासभा अपने निश्चय का पालन कराने में समर्थ है तो कितना अच्छा होता! महासभा सम्पूर्ण भारत में व्याप्त और सब प्रकार के साम्प्रदायिक भेदभाव से मुक्त एकमात्र राष्ट्रीय संस्था है। जिन अल्पसंख्यक जातियों ने यहां अपनी मांगें पेश की हैं और जो अथवा जिनकी ओर से हस्ताक्षर करने वाले भारत की ४६ प्रतिशत आबादी होने का—मेरे मत से अनुचित—दावा करते हैं, महासभा उन अल्पसंख्यक जातियों की भी प्रतिनिधि है ही। मैं कहता हूं कि महासभा इन सब अल्पसंख्यक जातियों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

महासभा का दावा यदि स्वीकार कर लिया गया होता तो आज स्थिति कितनी भिन्न होती! मैं अनुभव करता हूं कि शान्ति के लिए और इस परिषद् में बैठे हुए अ. प्र. तथा भारतीय स्त्री-पुरुष दोनों के प्रिय उद्देश सिद्ध करने के लिए मैं महासभा का दावा विशेष आग्रह के साथ पेश करता हूं। मैं यह इस कारण से कहता हूं कि महासभा बलवान संस्था है महासभा एक ऐसी संस्था है, जिसपर प्रतिद्वन्द्वी सरकार चलाने अथवा चलाने का विचार रखने का आरोप लगाया गया है और एक तरह से मैं इस आरोप का समर्थन कर चुका हूं। यदि आप यह समझ लें कि महासभा का तन्त्र किस तरह चलता है तो जो संस्था प्रतिद्वन्द्वी सरकार चला सकती है और बता सकती है कि अपने पास किसी भी प्रकार का सैनिक बल न होते हुए भी विषम संयोगों में वह ऐच्छिक शासन-तन्त्र चला सकती है तो आप उसका स्वागत करेंगे।

किन्तु नहीं यद्यपि आपने महासभा को आमन्त्रित किया है, फिर भी आप उसका अविश्वास करते हैं। यद्यपि आपने उसे आमन्त्रित किया है फिर भी आप सारे भारत की ओर से बोलने के उसके दावे का अस्वीकार करते हैं। अवश्य ही ससार के इस किनार पर बैठे हुए आप लोग इस दावे का विरोध कर सकते हैं, और यहां मैं इस दावे को साबित नहीं कर सकता। फिर भी आप मुझे उसे दृढ़ता से पेश करते हुए देख सकते हैं, इसका कारण यह है कि मेरे सिर पर जबर्दस्त जिम्मेदारी मौजूद है।

महासभा बागी मनोवृत्ति की प्रतिनिधि है। मैं जानता हूं कि सलाह-मशविरे के जरिये भारत की कठिनाइयों का सर्वसम्मत हल निकालने के लिए निमन्त्रित इस परिषद् में 'बागी' शब्द का उच्चारण न करना चाहिए। एक-के-बाद एक अनेक वक्ताओं ने कहा है कि भारत को अपनी स्वतन्त्रता सलाह-मशविरे और दलीलों से ही प्राप्त करनी चाहिए और ग्रेट ब्रिटेन यदि भारत की मांगों को दलीलों से ही स्वीकार करेगा तो इसमें उसका अर्थात् ग्रेट ब्रिटेन का अत्यन्त गौरव समझा जायगा किन्तु महासभा का मत सर्वथा ऐसा ही नहीं है। महासभा के पास दूसरा एक और मार्ग है जो कि आपको अप्रिय है।

मैंने कई वक्ताओं के भाषण सुने हैं और प्रत्येक वक्ता की बात को मैंने यहांतक सम्भव हो सका है पूरे ध्यान से और आदरपूर्वक समझने का प्रयत्न किया है। कई वक्ताओं ने कहा है कि यदि भारत में कानून भंग बलवा और हिंसक अत्याचार आदि की प्रवृत्ति पैदा हो जाय तो कितनी भयंकर मुसीबत आ पड़ेगी। मैं इतिहासज्ञ होने का ढोंग नहीं करता किन्तु एक स्कूल के विद्यार्थी की तरह मुझे इतिहास के पर्चे में भी पास होना पड़ा था। मैंने उसमें पढ़ा कि इतिहास के पृष्ठ पर स्वतंत्रता के लिए लड़ने वालों के रक्त का लाल धब्बा लगा हुआ है। मेरी जानकारी में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जिसमें राष्ट्रों ने कष्ट सहे बिना स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। मेरे मत से स्वतन्त्रता के

और स्वाधीनता के अन्ध-प्रेमियों ने छुरी का खंजर, विष का प्याला बन्दूक की गोली भाला तथा संहार के इन सब हथियारों और साधनों का आज तक उपयोग किया है। फिर भी इतिहासकारों ने उसकी निन्दा नहीं की है। मैं हिंसावादियों की वकालत करने के लिए खड़ा नहीं हुआ हूं। श्री गजनवी ने हिंसावादियों की चर्चा की और उसमें कलकत्ता कार्पोरेशन को भी सम्मिलित किया। उन्होंने जब कलकत्ता कार्पोरेशन की घटना का उल्लेख किया तो उससे मुझे चोट पहुंची। वे यह बात कहना भूल गये कि कलकत्ता के मेयर ने जो स्वयं तथा कार्पोरेशन अपने महात्मावादी सदस्यों के कारण जिस भूल में फंस गये थे उसके लिए मुआवजा दिया है।

जो महात्मावादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं, मैं उनकी वकालत नहीं करता। महात्मा के ध्यान में यह घटना के आते ही उसने उसके प्रतिकार का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही कलकत्ता के मेयर से इस घटना का विवरण मांगा और मेयर सज्जन हैं, इसलिए उन्होंने तुरन्त ही अपनी भूल स्वीकार कर ली और बाद में भूल-सुधार के लिए प्रस्ताव से जो बात संभव थी उसपर अमल किया। इस घटना पर बोलकर मुझे इस परिषद् का अधिक समय नहीं लेना चाहिए। कलकत्ता-कार्पोरेशन की ओर से चलने वाली राष्ट्रीय पाठशालाओं के विद्यार्थी जो गीत गाते बताये जाते हैं उनका भी श्री गजनवी ने उल्लेख किया है। उनके भाषण में और भी ऐसी भ्रमपूर्ण बातें थीं जिनके सम्बन्ध में मैं बोल सकता हूं, किन्तु उन-पर बोलने की मेरी इच्छा नहीं है। कलकत्ता के उत्तम कार्पोरेशन के सम्मान और सत्य के प्रति आदर के लिए तथा जो लोग अपना बचाव करने के लिए यहां उपस्थित नहीं हैं उनकी ओर से मैं ये दो प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट उदाहरण बता दे रहा हूं। मैं एक क्षण के लिए भी यह बात नहीं मानता कि वह गीत कलकत्ता कार्पोरेशन की पाठशालाओं में कार्पोरेशन की जानकारी में सिखाया जाता था। मैं इतना अवश्य

मानता हूं कि गत वर्ष के भयंकर दिनों में ऐसी कई बातें की गई थीं जिनके लिए हमें खेद है और जिनके लिए हमने मुग्राविजा दिया है।

यदि कलकत्ते में हमारे बालकों को यह गीत गाना सिखाया गया हो जो भी गलती से गाया है तो मैं उनकी ओर से क्षमा मांगने के लिए यहां मौजूद हूं। किन्तु इतना मैं चाहूंगा कि इस पाठशालाओं के शिक्षकों ने यह गीत कार्पोरेशन की जानकारी और प्रोत्साहन से सिखाया है यह बात साबित की जाय। महात्मा के विरुद्ध इस प्रकार के आक्षेप अनगिनत बार लगाये जा चुके हैं और अनगिनत बार महात्मा उनका उत्तर दे चुके हैं। फिर भी इस अवसर पर मैंने इसका उल्लेख किया है और यह भी यह बताने के लिए किया है कि स्वतन्त्रता के लिए साम लड़े हैं उन्होंने अपने प्राण गंवाये हैं और जिन्हें परस्तुत करना चाहते थे उन्हें मारा है और उनके हाथों मारे गये हैं।

अब महात्मा रंगमंच पर आती हैं और इतिहास में अपरिचित एक नवीन उपाय—अविनय भंग—खोज निकालती हैं और उसका अनुकरण करती जाती हैं। किन्तु मेरे सामने फिर एक पत्थर की दीवार आकर खड़ी होती है और मुझसे कहा जाता है कि दुनिया की कोई भी सरकार इस उपाय—इस पद्धति—को सहन नहीं कर सकती। अवश्य ही सरकार खुली बगावत को सहन नहीं कर सकती किसी भी सरकार ने सहन नहीं किया है। अविनय भंग को भी कोई सरकार सहन नहीं कर सकती है। किन्तु सरकारों को इस शक्ति के आगे झुकना पड़ा है जिस प्रकार कि ब्रिटिश सरकार को आज से पहले करना पड़ा है। और महान् दक्ष सरकार को भी आठ वर्ष कसौटी के बाद अनिवार्य स्थिति के सामने झुकना पड़ा था। जनरल स्मट्स बहादुर सेनापति हैं महान् राजनीतिज्ञ हैं और अत्यन्त कठिन काम लेने वाले भी हैं। फिर भी जो निरपराध स्त्री-पुरुष केवल अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए मन से उन्हें मार डालने की कल्पनामात्र से वे कांप उठे थे। और सन् १९०८ में जिस चीज के स्वयं कभी न देने की कठोर प्रतिज्ञा की

थी और जिसमें असफल होना था उन्हें सहारा था वही चीज उन्हें सन् १९१४ में इन सत्याग्रहियों को पूरी तरह तपाने के बाद, देनी पड़ी। भारत में लार्ड चेम्सफोर्ड को यही करना पड़ा था। बम्बई के गवर्नर को बोरसद और बारडोली में यही करना पड़ा था। प्रधानमन्त्री महोदय मैं आपको सूचित करना चाहता हूं कि इस शक्ति का मुकाबला करने का समय अब चला गया है और इसके आगे आज पसन्दगी पड़ी है जुदे मार्ग ग्रहण की बात है इस बोझ से मैं दबा जाता हूं। अपने देश के भाई-बहनों और उसी प्रकार बालकों को भी यदि इस अग्नि-परीक्षा में डाले बिना कुछ हो सकता हो तो मैं घाढ़ निराशा में भी आशा रखूंगा। अपने देश के लिए सम्मानपूर्ण समझौता प्राप्त करने के लिए शक्ति भर सब प्रकार के प्रयत्न कर छोड़ूंगा। इन सबको इस प्रकार के संग्राम में फिर उतारने में मुझे सुख अथवा आनन्द नहीं है किन्तु यदि हमारे भाग्य में अधिक अग्नि-परीक्षा लिखी ही हो तो मैं इसमें बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रवेश करूंगा। मुझे बड़े-से-बड़ा आश्वासन यह है कि मुझे जो सत्य प्रतीत होता है, वही मैं करता हूं देश को जो सत्य प्रतीत होता है वही वह करता है और देश को यह जानकर अधिक संतोष होगा कि वह प्राण लेता तो नहीं पर देता है; वह अंग्रेज लोगों को सीधा कष्ट नहीं देता वरन् स्वयं कष्ट सह लेता है। प्रोफेसर गिलबर्ट मरे ने मुझसे कहा था—उनका यह वचन मैं कभी न भूलूंगा मैं केवल उसका अनुवाद करता हूं—कि आप एक क्षण के लिए भी यह नहीं मानते कि जब आपके हजारों देशबन्धु कष्ट सहन करते हैं तब हम अंग्रेज लोग दुःखी नहीं होते क्या हम इतने हृदय-शून्य हैं? मैं ऐसा नहीं मानता। मैं अवश्य जानता हूं कि आप भी दुःखी होते हैं। किन्तु मैं चाहता हूं कि आप दुःखी हों क्योंकि मुझे आपका हृदय पिघलाना है और जब आपका हृदय पिघलेगा तभी सलाह मशविरे का उपयुक्त समय आवेगा। सलाह-मशविरे में सम्मिलित होने के लिए, इतनी दूर आया हूं, वह इसलिए कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ

कि आपके देशबन्धु लार्ड अर्विन ने प्रथम पार्लियेमेन्टों के जरिये हमें खूब जता दिया है उन्होंने पूरा सबूत पा लिया है कि भारत के हजारों स्त्री पुरुष और बालकों ने कष्ट सहन किया है और पार्लियेमेन्ट हों तो क्या साठी बरसें तो क्या आगे बढ़ता हुआ तूफान इनमें किसीसे भी शान्त होता नहीं आजादी के लिए तड़पते भारत के स्त्री-पुरुषों के हृदय में जो प्रबल भावनाएं जाग्रत हो गई हैं उनके प्रवाह को रोका नहीं जा सकता।

अभी समय बिल्कुल गया नहीं है इसलिए मैं चाहता हूं कि महात्मा जिस बात के लिए खड़े हैं आप उसे समझें। मेरा जीवन आपके हाथ में है। कार्य-समिति के महासमिति के सब सदस्यों का जीवन आपके हाथ में है। किन्तु स्मरण रखिए कि इन करोड़ों मूक प्राणियों का जीवन भी आपके हाथ में है। मेरा बस चले तो मैं इन प्राणियों को नहीं होम देना चाहूंगा। इसलिए स्मरण रखिए कि यदि मसौदे में मैं कोई सम्मानपूर्ण समझौता करा सकूं तो उसके लिए कितना भी बलिदान क्यों न करना पड़े मैं उसे बहुत न समझूंगा। महात्मा के हृदय में यही भावना काम कर रही है कि भारत को सच्ची स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसकी यह भावना यदि मैं आपमें भर सकूं तो आप मुझमें समझौते की बड़ी-से-बड़ी भावना पायेंगे। स्वतन्त्रता को आप कुछ भी नाम दें गुलाब को दूसरा कोई भी नाम न तो भी वह उतनी ही सुगन्धि देगा किन्तु मैं जो चाहता हूं वह स्वतन्त्रता का असली गुलाब होना चाहिए, नकली नहीं। यदि आपके और उसी तरह महात्मा के इस शरीर के और उसी तरह मंजीव जनता के मन में इस शब्द का एक ही अर्थ हो तो आप समझौते के लिए पूरा-पूरा अवसर पा सकेंगे महात्मा को समझौते के लिए सदैव तत्पर पायेंगे। किन्तु जबतक यह स्पष्ट नहीं होता जबतक जिस शब्द का आप मैं और सब प्रयोग करते हैं, उसकी एक ही व्याख्या, एक ही अर्थ नहीं होता तब तक कोई समझौता सम्भव नहीं। हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं,

उसकी प्रत्येक के मन में जुदी-जुदी व्याख्या हो तो समझौता हो ही किस तरह सकता है? प्रधानमन्त्री महोदय मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि ऐसा आधार ढूंढ निकालना असम्भव है जहां कि हम समझौते की भावना का प्रयोग कर सकें। मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन सब उकता देने वाले सप्ताहों में हम जिन शब्दों का प्रयोग कर रहे थे उनकी कोई सर्व-सम्मत व्याख्या मैं अभी तक ढूंढ न सका।

गत सप्ताह एक बोलचाल सज्जन ने मुझे लन्दन का क़ानून बताकर कहा "आपने 'उपनिवेश' (Dominion) की परिभाषा देखी है ?" मैंने 'उपनिवेश' की व्याख्या पढ़ी और उसमें यह देखकर कि 'उपनिवेश' शब्द की पूरी व्याख्या की गई है और सामान्य व्याख्या के सिवा विशेष व्याख्या की गई है स्वभावतः मैं किसी उलझन में नहीं पड़ा अथवा मुझे कुछ आघात न पहुंच सका। इसमें इतना ही कहा गया था कि "उपनिवेश शब्द में आस्ट्रेलिया दक्षिण अफरीका कनाडा आदि और अन्त में आयरिश फ्री स्टेट का समावेश होता है। मेरा खयाल नहीं है कि मैंने उसमें इजिप्ट का नाम देखा हो। फिर उस सज्जन ने कहा "आपके 'उपनिवेश' का क्या अर्थ है यह आपने देखा? मुझपर इसका कुछ असर न पड़ा। मेरे औपनिवेशिक अथवा पूर्ण स्वराज्य का क्या अर्थ किया जाता है मुझे इसकी परवा नहीं। एक तरह से मेरा हृदय हलका हो गया।

मैंने कहा—मैं अब औपनिवेशिक झगड़े से बरी हूं क्योंकि मैं उससे अलग हो गया हूं। मुझे तो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। और फिर भी कई अंग्रेजों ने कहा—हां तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता मिल सकती है किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है ? और फिर हम जुदी-जुदी व्याख्याओं पर आगये।

मुझसे एक बड़े राजनीतिज्ञ मेरे साथ बातचीत करते थे। उन्होंने कहा—सच कहता हूं मैं नहीं जानता था कि पूर्ण स्वतन्त्रता का आप

यह अर्थ करते हैं। उन्हें जानना चाहिए था फिर भी वे नहीं जानते थे और वे क्यों नहीं जानते थे यह मैं आपको बतलाता हूं। जब मैंने उनसे कहा कि मैं साम्राज्य में साझेदार नहीं रह सकता तब उन्होंने कहा—अवश्य यह तो इसका तर्क-सिद्ध अर्थ है। मैंने कहा—पर मुझे तो साझेदार होना है। मुझे यदि जबर्दस्ती साझेदार बनाया जाय तो मैं हर्गिज न बनूंगा मुझे तो स्वेच्छा से ग्रेटब्रिटेन का साझेदार बनना है, मुझे अंग्रेज जनता का साझेदार बनना है। किन्तु जो स्वतन्त्रता अंग्रेज जनता भोगती है, उसीका मुझे भोग करना है और मैं इस साझेदारी में केवल भारत के अथवा एक दूसरे के लाभ के लिए शामिल नहीं होना चाहता मैं यह साझेदारी इसलिए चाहता हूं कि संसार के दुःखित लोग जिस बोझ के नीचे कुचले जा रहे हैं, वे उसके भार से मुक्त हों।

इस बातचीत को हुए दस-बारह दिन हो गये। यह बात विचित्र तो मालूम होगी किन्तु मुझे एक दूसरे अंग्रेज की तरफ से चिट्ठी मिली। इन्हें आप भी पहचानते हैं और उनके प्रति आदर भाव रखते हैं। अन्य अनेक बातों के साथ उन्होंने लिखा है "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यजाति की सुख-शांति का आधार अपनी मित्रता पर निर्भर है" और मानो मैं न समझता होऊं इस तरह वे लिखते हैं—आपकी और मेरी जनता की मित्रता पर। आगे जो उन्होंने लिखा है वह भी मुझे आपको पढ़-सुनाना चाहिए—और उनमें अंग्रेज सब भारतीयों में केवल आपको ही चाहते हैं और समझते हैं।

उन्होंने कोई शब्द खुशामद में बरबाद नहीं किया है और मैं नहीं समझता कि उन्होंने अन्तिम वाक्य मेरी खुशामद के लिए लिखा है। मैं किसीकी खुशामद में नहीं आ सकता। इस चिट्ठी में ऐसी कई बातें हैं, जो यदि मैं आपको सुनाऊं तो कदाचित् आप इस वाक्य का अर्थ अधिक समझ सकें। किन्तु मैं आपसे इतना ही कहता हूं कि अन्तिम वाक्य उन्होंने मुझे दूर को ध्यान में रख कर नहीं लिखा है। वे किसी गिनती

में नहीं हूँ और मैं जानता हूँ कि कई अंग्रेजों की दृष्टि में मैं किसी गिनती में नहीं हूँ किन्तु कुछ अंग्रेज मुझे किसी गिनती में समझते हैं, क्योंकि मैं एक राष्ट्र के एक प्रभावशाली संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से आया हूँ इसीलिए उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

किन्तु प्रधानमन्त्री महोदय यदि मैं कोई भी व्यावहारिक आधार पा सकूं तो समझौते के लिए काफी अवसर है। मैं मैत्री के लिए तरस रहा हूँ। मेरा कार्य गुलामों के मालिक और जालिम को जड़ उखाड़ना नहीं है। मेरी नीति मुझे ऐसा करने से रोकती है, और आज महासभा ने मेरी तरह इस नीति को धर्म की तरह तो नहीं किन्तु व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि महासभा का विश्वास है कि भारत के लिए—३५ करोड़ के राष्ट्र के लिए—यही योग्य और सर्वोत्तम मार्ग है।

३५ करोड़ की आबादी के राष्ट्र को खूनी के खंजर की आवश्यकता नहीं उसे तलवार, भाला अथवा गोली की आवश्यकता नहीं उसे केवल अपने संकल्प की जरूरत है 'नहीं' कहने की शक्ति की आवश्यकता है और वह राष्ट्र आज 'नहीं' कहना सीख रहा है।

किन्तु यह राष्ट्र करता क्या है ? अंग्रेजों को एकदम अलग करता है नहीं। उसका उद्देश्य आज अंग्रेजों का हृदय-परिवर्तन करना है। इंग्लैंड और भारत के बीच का यह बन्धन मैं तोड़ना नहीं चाहता किन्तु उसका रूप बदलना चाहता हूँ। मैं उस गुलामी का पूर्ण स्वतन्त्रता के रूप में बदलना चाहता हूँ। इसे आप पूर्ण स्वतन्त्रता कहें अथवा दूसरा कुछ भी नाम दें मैं उस शब्द के लिए झगड़ने नहीं बैठूंगा। और यदि मेरे देशबन्धु उस शब्द को स्वीकार कर लेने के लिए मेरा विरोध करें तो जबतक आपके सुझाये हुए शब्द में मेरे अर्थ का समावेश होता होगा, तबतक मैं इस विरोध को सहने के लिए भी समर्थ हो सकूंगा। इसलिए मुझे अगणित बार आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना पड़ता है कि जो सरक्षण आपने सुझाये हैं, वे सर्वथा असन्तोषजनक हैं। व भारत के हित में नहीं हैं।

वाणिज्य और 'उद्योग-संघों' के तीन विशेषज्ञों ने अपने-अपने जुदे तरीके से अपनी विशेषज्ञता के अनुभव से बताया है कि जहाँ देश की ३० फी सदी आय गिरवी रखदी गई है जिसके कि वापस आने की कोई संभावना नहीं वहाँ किसी भी उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के लिए देश का शासनतन्त्र चलाना असम्भव बात है। मेरी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह अपने प्रचुर ज्ञान से उन्होंने बताया है कि इन आर्थिक संरक्षणों का भारत के लिए क्या अर्थ है। ये भारत को सर्वथा अपाहिज अथवा अपंग बना देनेवाले हैं। इस परिषद् में आर्थिक संरक्षणों की चर्चा हुई है किन्तु इसमें सेना—रक्षण—के प्रश्न का भी समावेश हो जाता है। फिर भी यद्यपि मैं कहता हूँ कि जिस रूप में ये संरक्षण पेश किये गये हैं, उस रूप में ये असन्तोषजनक हैं, तथापि बिना किसी हिचकिचाहट के मैंने यह भी कहा है और बिना किसी हिचकिचाहट के फिर कहता हूँ कि जो संरक्षण भारत के लिए हितकर सिद्ध कर दिये जायँगे उन्हें देने के लिए, उन्हें स्वीकार करने के लिए महासभा वचनबद्ध है।

संघ-विधायक समिति की एक बैठक में मैंने बिना किसी संकोच के इसी स्वीकृति का विस्तार किया था और कहा था कि ये संरक्षण ग्रेट ब्रिटेन के लिए भी लाभप्रद होने चाहिएं। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ग्रेट ब्रिटेन के वास्तविक हित के लिए हानिकारक हों ऐसे संरक्षण मुझे नहीं चाहिए। भारत के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। ग्रेट ब्रिटेन के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। भारत के अवैध हितों का बलिदान करना होगा ग्रेट ब्रिटेन के अवैध हितों का भी बलिदान करना होगा। इसलिए मैं फिर दुहराता हूँ कि यदि हम एक ही शब्द का एक ही सा अर्थ करते हों तो मैं श्री जयकर के साथ सर तेजबहादुर सप्रू के साथ और इस परिषद् में बोलने वाले अन्य प्रसिद्ध वक्ताओं के साथ सहमत हो जाऊँगा।

इतने सब परिश्रम के बाद हम सब ठीक-ठीक एकमत पर आ गये हैं

इस बात में मैं उनके साथ राजी हो जाऊंगा किन्तु मेरी निराशा और मेरा दुःख यह है कि मैं इन शब्दों को इसी अर्थ में नहीं देख रहा हूं। मुझे भय है कि संरक्षणों का भी जयकर ने जो अर्थ किया है वह मेरे अर्थ से जुदा है और उदाहरण के तौर पर, कौन जाने कदाचित् सर सेम्युअल होर के मन में उसका दूसरा ही अर्थ हो। सच पूछा जाय तो हम अभी अखाड़े में उतरे ही नहीं हैं। मैं इतने दिनों से वास्तव में अखाड़े में उतरने के लिए आतुर हूं तड़प रहा हूं और मैंने सोचा—हम अधिकाधिक निकट क्यों नहीं आते और हम अपना समय वाकपटुता में वक्तृत्व और वादविवाद तथा छोटी-छोटी बातों में विजय प्राप्त करने में क्यों बरबाद कर रहे हैं? भगवान जानता है कि मुझे अपनी खुद की आवाज सुनने की जरा भी इच्छा नहीं है। ईश्वर जानता है कि किसी भी वाद विवाद में भाग लेने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। मैं जानता हूं कि स्वतन्त्रता इससे कठिन वस्तु है और मैं जानता हूं कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता उससे भी अधिक कठिन है। हमारे सामने ऐसी समस्याएं हैं, जो किसी भी राजनीतिज्ञ को चक्कर में डाल सकती हैं। हमारे सामने ऐसी समस्याएं हैं जो अन्य राष्ट्रों के सामने न आई थीं अथवा जिनका उन्हें हल न करना पड़ा था। किन्तु मैं उनसे हारता नहीं हूं। भारत की आबोहवा में पले हुए लोग उनसे हार नहीं सकते। ये समस्याएं हमारे साथ लगी हुई हैं जिस प्रकार हमें अपनी प्लेग को दूर करना है हमें अपने मलेरिया-ज्वर की समस्या को सुलझाना है आपको जो न करना पड़ा वह सांप बिच्छू, बन्दर बाघ और सिंह की समस्याओं का हल हमें करना है। हम इन समस्याओं का हल करना है क्योंकि हम उस आबो-हवा में पले हैं।

उनसे हम घबराते नहीं। कैसी भी क्यों न हो पर इन जहरीले कीड़े मकोड़ों और तरह-तरह के जानवरों के प्रहारों का मुकाबला करते हुए भी हम अपना अस्तित्व को आज भी कायम रखते हुए हैं। इसी प्रकार इन समस्या का भी हम मुकाबला करेंगे और अन्ततोगत्वा कोई-न-कोई

रास्ता निकाल ही लेंगे। परन्तु आज तो आप और हम एक गोलमेज के आस-पास इसलिए एकत्र हुए हैं कि आपस में मिल-जुल कर कोई संयुक्त योजना ढूंढ निकालें या कि आपस में मार्ग पा सके। कृपया विश्वास कीजिए कि मैं यहां समझौते के लिए ही आया हूं। महासभा की ओर से पेश किये हुए अपने दावे में जिसको मैं यहां दुहराना नहीं चाहता मैं कोई कमी नहीं करता न संघ-विधायक समिति में मुझे जो भाषण देने पड़े उनका एक भी शब्द ही वापस लेता हूं फिर भी मैं कहता हूं कि ब्रिटिश कल्पनाशक्ति से जो भी कोई योजना या विधान तैयार हो सके अथवा श्री शास्त्री सर तेजबहादुर सप्रू श्री जयकर, श्री जिन्ना सर मुहम्मद शफी तथा इन जैसे दूसरे बहुत से विधान-विधायकों की कल्पना शक्ति से जो कोई योजना तैयार हो सके उन सबपर विचार करने के लिए ही मैं यहां हूं।

मैं घबराऊंगा नहीं। और जबतक जरूरत होगी मैं यहीं बना रहूंगा क्योंकि सविनय-अवज्ञा को मैं फिर से जारी नहीं करना चाहता। दिल्ली में जो अस्थायी सन्धि हुई थी उसे मैं स्थायी सन्धि के रूप में परिवर्तित करना चाहता हूं। लेकिन ईश्वर के लिए मुझे, ६२ बरस के इस बूढ़े आदमी को इसके लिए थोड़ा अवसर तो दो। मेरे लिए और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधित्व करता हूं उसके लिए अपने हृदय में थोड़ा स्थान तो बनाओ। लेकिन उस संस्था पर आप विश्वास नहीं करते हालांकि प्रत्यक्षतया मुझमें आप विश्वास करते हुए भले ही जान पड़ें। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस संस्था से भिन्न न समझिए, जिसका कि मैं तो समुद्र में एक बिन्दु के समान हूं। मैं उस संस्था से हरगिज बड़ा नहीं हूं जिससे कि मैं सम्बन्धित हूं। मैं तो उस संस्था से कहीं छोटा हूं—और, यदि आप मेरे लिए स्थान रखते हों अगर मुझपर आप विश्वास करते हों तो मैं आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप महासभा पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं। क्योंकि मेरे पास अपना कोई अधिकार नहीं है,

सिवा उसके कि जो मानसभा से मुझे मिला है। यदि आप महासभा की प्रतिष्ठा के अनुसार काम करेंगे तो आतंकवाद को आप नमस्कार कर देंगे तब आतंकवाद को दबाने के लिए, आपको आतंकवाद की जरूरत नहीं पड़ेगी। आज तो आपको अपने अनुशासनयुक्त और संगठित आतंकवाद द्वारा यहां पर मौजूद आतंकवादियों से लड़ना है, क्योंकि वास्तविकता से अथवा दैववाणी से आप अन्धों की तरह विमुख ही रहेंगे। क्या आप उस वाणी को न सुनेंगे जो इन आतंकवादियों या क्रान्तिकारियों के रक्त से लिखी जा रही है? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम जो रोटी चाहते हैं वह गेहूं की बनी नहीं बल्कि स्वतन्त्रता की रोटी चाहते हैं, और जब-तक वह रोटी मिल नहीं जाती यह आजादी मिल नहीं जाती ऐसे हजारों लोग आज मौजूद हैं जो इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही शांति से रहने देंगे?

मैं प्रार्थना करता हूं कि आप उस दैववाणी को सुनें। मैं कहता हूं कि जो राष्ट्र पहले ही अपने सन्तोष के लिए कहावत तक में मशहूर है उसके सन्तोष की आप परीक्षा न करें। हिन्दुओं की विनम्रता तो प्रसिद्ध ही है पर मुसलमान भी हिन्दुओं के अच्छे या बुरे सम्बन्ध से बहुत-कुछ विनम्र बन गये हैं। और, हां मुसलमानों का यह हवाला सहसा मुझे अल्पसंख्यकों की उस समस्या का स्मरण करा देता है जो कि एक पेचीदा समस्या है। विश्वास कीजिए कि यह समस्या हमारे यहां मौजूद है और हिन्दुस्तान में जो बात मैं अक्सर कहा करता था उसे मैं भूल नहीं गया हूं—उन शब्दों को यहां फिर से दुहराता हूं—कि अल्पसंख्यकों की समस्या का जबतक हल नहीं हो जाता तबतक हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य नहीं है—हिन्दुस्तान के लिए आजादी नहीं है। मैं जानता हूं कि मैं इस बात को महसूस करता हूं फिर भी जो मैं यहां आया हूं वह सिर्फ इसी आशा से कि शायद अकस्मात् यहां मैं इसका कोई उपाय निकाल सकूं, आज भी इस बात से मैं बिलकुल नाउम्मीद नहीं हो गया हूं कि एक-न-एक दिन अल्पसंख्यकों की समस्या का कोई-न-कोई वास्तविक और

स्थायी हल मिल ही जायगा। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, उसीको मैं फिर से दुहराता हूं कि जबतक विदेशी शासन-रूपी तलवार एक जाति को दूसरी जाति से और एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से विलग करती रहेगी तबतक कोई भी वास्तविक स्थायी हल नहीं होगा, न इन जातियों के बीच स्थायी मैत्री ही होगी।

यदि कोई हल हुआ भी तो आखिर में और बहुत-से-बहुत वह कागजी ही होगा। लेकिन जैसे ही आप उस तलवार को हटा लें फिर वैसे ही घरेलू बन्धन, घरेलू प्यार मुहब्बत, संयुक्त उत्पत्ति का ज्ञान, क्या आप समझते हैं कि इन सबका कोई असर न पड़ेगा?

क्या ब्रिटिश शासन से पहले, जबकि यहां किसी अंग्रेज की शक्ल तक दिखलाई नहीं पड़ती थी, हिन्दू और मुसलमान तथा सिक्ख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते ही रहते थे? हिन्दू और मुसलमान इतिहासकारों के लिखे उस वक्त के जो सच्चे-सच्चे वर्णन हमारे यहां मौजूद हैं, उनसे तो इसके विपरीत यही प्रकट होता है कि आज की अपेक्षा उस समय हम कहीं शान्ति से रह रहे थे और आज भी गांवों में हिन्दू-मुसलमान कहां लड़ रहे हैं? उन दिनों तो वे एक-दूसरे से बिलकुल लड़ते ही नहीं थे। मौ. मुहम्मद अली, जो स्वयं थोड़े-बहुत इतिहासज्ञ थे, अक्सर यह बात कहा करते थे। उन्होंने कहा था—"अगर परमेश्वर उनके शब्दों में 'अल्लाह', मुझे जिन्दगी दे, तो मेरा इरादा है कि मैं भारत के मुसलमानी शासन का इतिहास लिखूं। उस वक्त उन्हीं कागज-पत्रों से जिन्हें कि अंग्रेजों ने सुरक्षित रख रक्खा है मैं दिखलाऊंगा कि औरंगजेब वैसा दुष्ट नहीं था जैसा कि अंग्रेज इतिहासकारों ने उसे चित्रित किया है और न मुगल शासन ही वैसा खराब था जैसा कि अंग्रेजी इतिहास में हमें बतलाया गया है," इत्यादि इत्यादि। और यही बात हिन्दू-इतिहासकारों ने लिखी है। दरअसल यह झगड़ा बहुत पुराना नहीं है, बल्कि इस तीव्र लज्जा (पराधीनता) का ही समवयस्क है। मैं तो यह कहने का साहस करता हूं कि अंग्रेजों के आगमन के साथ ही इसका जन्म हुआ है और

जैसे ही यह सम्बन्ध—ग्रेट ब्रिटेन और भारतवर्ष के बीच का यह दुर्भाग्य-पूर्ण कृत्रिम एवं अस्वाभाविक सम्बन्ध—स्वाभाविक सम्बन्ध के रूप में परिवर्तित हो जायगा जबकि—यदि ऐसा हो सके कि—यह स्वैच्छिक या भागीदारी का सम्बन्ध हो जायगा कि जिसमें किस भी पक्ष की इच्छा होने पर उसे छोड़ा या तोड़ा जा सके तो आप देखेंगे कि हिन्दू, मुसल-मान सिक्ख अंग्रेज, अधगोरे, ईसाई, अछूत सब कैसे एक आदमी की तरह आपस में मिल-जुल कर रह सकते हैं।

नरेशों के बारे में आज मैं अधिक नहीं कहना चाहता मगर मैं उनके और महासभा के साथ अन्याय करूंगा यदि गोलमेज-परिषद्-सम्बन्धी तो नहीं किन्तु नरेशों के साथ के अपने दावे को पेश न करूं। संघ-शासन में शामिल होने के लिए वे अपनी जो शर्तें पेश करें उसकी उन्हें छूट है। परन्तु मैंने उनसे प्रार्थना की है कि वे भारत के अन्य भागों में रहने वालों के लिए भी मार्ग सुगम करदें इसलिए सिर्फ उनके कृपापूर्ण और गम्भीर विचार के लिए मैं कुछ सूचनाएं भर कर सकता हूं। मैं समझता हूं कि यदि वे समस्त भारत की संयुक्त सम्पत्ति के रूप में कुछ मौलिक अधिकारों को फिर वे कुछ भी क्यों न हों स्वीकार करलें और उस स्थिति को स्वीकार कर न्यायालय द्वारा—और वह न्यायालय भी तो उन्हीं के द्वारा बना हुआ होगा—उनकी जांच होने दें और अपने प्रजा-जनों की ओर से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को—केवल सिद्धान्त को ही—वे प्रारम्भ कर दें तो मैं समझता हूं कि वे अपने प्रजाजनों को मिलाने उनका सहयोग प्राप्त करने की दिशा में एक लम्बा रास्ता तय कर लेंगे। यह दिखलाने के लिए कि उनके अन्दर भी प्रजातन्त्रीय भावना प्रज्वलित है और वे शुद्ध स्वेच्छाचारी बने रहना नहीं चाहते बल्कि ग्रेट ब्रिटेन के राजा जार्ज की तरह अपने प्रजाजनों के वैध शासक बनना चाहते हैं। इस प्रकार वे अवश्य ही लम्बा कदम रखेंगे।

भारतवर्ष जिसका हकदार है और जिसे वस्तुतः वह ले सकता है, वह उसे लेना चाहिए। परन्तु उसे जो कुछ भी मिले और जब भी मिले

सीमा-प्रान्त को तो पूर्ण स्वाधिकार (Autonomy) प्राप्त ही मिल जाने दीजिए। उस हालत में सीमा प्रान्त सारे भारतवर्ष के लिए एक अनुपस्थित प्रदर्शन होगा। अतएव सीमा-प्रान्त को कल ही प्रान्तीय स्वराज्य मिल जाय यह सभा का सारा मत इसी पक्ष में मिलेगा। प्रधानमन्त्री महोदय यदि मन्त्रि-मण्डल से यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लेना सम्भव हो कि कल से ही सीमा-प्रान्त पूर्णतया स्वाधिकार-भोगी (Autonomous) प्रान्त बन जाय तो मैं सरहदी कौमों के बीच अपना उपयुक्त स्थान ले लूंगा और जब सरहद के उस पार वाले लोग भारत पर कोई बुरी नजर डालेंगे तो उन्हें अपना मददगार बना लूंगा।

सबके अन्त म मैं कहूंगा कि अन्त का विषय मेरे लिए बड़ा आनन्ददायी है। आपके साथ बैठकर समझौते की बातचीत करने का अवसर नहीं आखिरी मौका है। यह बात नहीं कि मैं ऐसा चाहता हूं। मैं तो आपकी एकान्त-मन्त्रणाओं में भी आपके साथ इसी मेज पर बैठना और आपके साथ चर्चा तथा अपना पक्ष पेश करना चाहता हूं और आखिरी घुघरी या कुबकी लगाने से पहले घुटने तक टेक देने को तैयार हूं। लेकिन मेरा ऐसा सौभाग्य है या नहीं कि मैं आपके साथ ऐसा सद्भाव जारी रखूं यह बात मेरे ऊपर निर्भर नहीं है। संभव है कि यह आपपर भी निर्भर न हो। यह तो इतनी सारी परिस्थितियों पर निर्भर है कि जिनपर शायद न तो आपका और न हमारा ही किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण होगा। अतः श्रीमान् सम्राट् से लेकर जहां मैंने अपना निवास स्थान बनाया उस ईस्ट-एण्ड के दरिद्रतम लोगों तक को धन्यवाद देने की आनन्दमयी रस्म तो मुझे अदा कर ही लेने दीजिए। लन्दन के उस मुहल्ले में जिसमें ईस्ट-एण्ड के गरीब लोग रहते हैं मैं भी उन्हीं में का एक बन गया हूं। उन्होंने मुझे अपना ही एक सदस्य और अपने कुटुम्ब का एक अनुग्रहीत सम्य मान लिया है। यहां से मैं अपने साथ जो-कुछ ले जाऊंगा उसमें यह एक सबसे अधिक कीमती खजाना होगा। यहां भी मेरे साथ सभ्य व्यवहार ही हुआ है और जिनके भी सम्पर्क में मैं आया

के प्रधानमन्त्री ने समय की पाबन्दी-सम्बन्धी जो हिदायत दी है, बड़ी खुशी के साथ उसे मैं अपने देश-बन्धुओं को समझाने की कोशिश करूँगा।

दूसरी जो चीज आपने हमें बताई है वह आपका आश्चर्यजनक परिश्रम है। स्कॉटलैण्ड की कठोर आबोहवा में पले हुए होने के कारण आप यह नहीं जानते कि आराम कैसा होता है और न हमें भी यह जानने दिया जाता है। कि आराम कैसा होता है। करीब-करीब बेजोड़ धर्मिष्ठता के साथ आपने हमसे—मेरे मित्र और पूज्य भाई मदनमोहन मालवीयजी एवं मेरे-जैसे बूढ़े आदमी से—भी काम लिया है।

आप जैसे स्वास्थ्य को धोखा देने वाली निर्दयता के साथ आपने मेरे मित्र और माननीय नेता शास्त्रीजी को काम कर-कर के लगभग थका ही दिया है। आपको कल हमसे कहा भी था कि आप उनके शरीर की हालत जानते थे फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा के सामने समस्त वैयक्तिक बाधा को आपने एक ओर रख दिया। इसके लिए आप सम्मान के पात्र हैं और आपके इस आश्चर्य-कारक परिश्रम को मैं सदैव स्मरण रखूँगा।

लेकिन इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं दौड़िया पैदा करनेवाली जल-वायु का जीव समझा जाता हूँ फिर भी कदाचित् परिश्रम में हम आपके साथ मुकाबला कर सकेंगे। किन्तु इसकी कोई बात नहीं। जैसा कि आपका हाउस ऑफ कामन्स कभी-कभी करता है, जब पूरे चौबीस घण्टे काम करके जो आपने इस बात का नमूना बताया हो कि वक्त-वक्त मौके पर आप कैसे अविश्रान्त काम कर सकते हैं तो आप जरूर बाजी मार ले जायँगे।

अतएव धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए मैं बड़ा खुश हूँ। किन्तु मुझे जो उत्तरदायित्व दिया गया है उसका पालन करने और उसमें अपना सौभाग्य मानने का एक और भी कारण है और वह शायद अदा कारण है। कुछ समय है —कुछ सम्भव है वही मैं कहूँगा क्योंकि

आपकी घोषणा का मैं एक बार, दो बार, तीन बार, जितनी बार आवश्यकता होगी उतनी बार अध्ययन करूंगा उसके एक-एक शब्द का अर्थ समझूंगा उसमें गूढ़ता होगी तो उसे भी खोजूंगा। उसके अन्तर्गत जो-कुछ छिपा होगा उसे समझ लूंगा और तभी यदि आना हुआ तो मैं इस निर्णय पर आऊंगा जैसी कि अभी सम्भावना दिखाई पड़ती है कि मुझे तो अब अपने पुराने रास्ते ही जाना होगा।

हमारे रास्ते जुदी-जुदी दिशाओं में जाते हैं तथापि हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है। आप तो मेरे हार्दिक और आन्तरिक धन्यवाद के पात्र हैं। हमारे इस मनुष्य समाज में एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखने के लिए हमें एक-दूसरे के साथ सहमत होना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। अगर कोई सिद्धांत ही न रहे इस हद तक एक-दूसरे के विचारों के लिए सूक्ष्म आदर या ममता नहीं रखी जा सकती। इसके विपरीत मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन की हलचलों के दायरे में। कई बार सगे भाइयों तक का अपने-अपने रास्ते जाना पड़ता है किन्तु यदि कलह के अन्त में—झगड़ों के अन्त में—वे यह कह सकें कि उनके मनों में द्वेष न था और सज्जनता और मैत्री के साथ उन्होंने एक-दूसरे के साथ व्यवहार किया तो कोई चिन्ता की बात नहीं। यदि इस प्रकरण के अन्त में मैं आपके एवं अपने देश-बन्धुओं के विषय में यह कह सकूं और उदारमना आपके तथा आपके देश-बन्धुओं के विषय में वह कह सकें तो मैं कहूंगा कि हम अच्छी तरह निपटे हैं। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा किन्तु मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं है। अब मुझे आपसे बिलकुल विपरीत दिशा में जाना पड़े तो भी आप तो मेरे आन्तरिक धन्यवाद के अधिकारी हैं।

परिशिष्ट (१)

दिल्ली का समझौता—५ मार्च सन् १९३१ ईसवी

[वाइसराय और गांधीजी के बीच हुई बातचीत के परिणामस्वरूप हुए जिस समझौते के कारण महासभा ने सविनय आज्ञाभंग के आन्दोलन को स्थगित कर दूसरी गोलमेज परिषद् में भाग लेना स्वीकार किया था उसके कुछ आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं।]

धारा २—विधान-सम्बन्धी प्रश्नों के विषय में भविष्य में होनेवाली बातचीत का विस्तार-क्षेत्र सम्राट सरकार की अनुमति द्वारा आगे कार्य न करने के लिए गोलमेज सभा द्वारा प्रस्तावित भारत के लिए वैध-शासन की योजना ही है। उस प्रस्तावित योजना का संघ-शासन एक मुख्य अंग है—इसी प्रकार कुछ संरक्षण जो भारत के हित में हैं जैसे रक्षा, परराष्ट्र-सम्बन्धी प्रश्न, अल्पसंख्यक जातियों का स्थान, भारत की साख और आर्थिक जिम्मेदारियाँ ये उसी योजना के प्रमुख अंग हैं।

धारा ६—विदेशी माल के बहिष्कार से दो बातें पैदा होती हैं—पहली बहिष्कार का रूप और दूसरी बहिष्कार करने के तरीके। इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत की तरक्की देश के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ चालू की गई योजना के अनुरूप भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और उसकी यह इच्छा नहीं है कि इस विषय में किये हुए प्रचार, शान्ति से समझाना और विज्ञापन आदि का जो किसीकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधा न उपस्थित करें और जो कानून और शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हों, विरोध करे। विदेशी माल का बहिष्कार (सिवाय कपड़े के जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन के दिनों में केवल नहीं तो विशेषकर,

अंग्रेजी माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी जैसा कि स्वीकार भी किया गया है, राजनैतिक ध्येय प्राप्ति के हितार्थ दबाव डालने के लिए।

अत यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रिटिश भारत, देशी राज्य सम्राट् की सरकार और इंग्लैंड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रतापूर्ण बातचीत में महासभा के प्रतिनिधियों की उपस्थिति के जो इस समझौते का प्रयोजन है उपरोक्त रूप में और उपरोक्त कारणों से किया हुआ बहिष्कार विपरीत होगा।

इसलिए यह तय हुआ कि सविनय आज्ञाभंग आंदोलन के स्थगित होने में ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में न लाना भी शामिल है। इसलिए आन्दोलन के समय में जिन जिन ने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द करदी थी यदि वे अपना निश्चय बदलना चाहें तो उनको स्वतन्त्रता से ऐसा करने दिया जाय।

धारा ७—विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल व्यवहार कराना और मादक द्रव्यों के व्यवहार को कम करने के लिए जो उपाय काम में लाये जाते हैं उनके विषय में यह तय किया जाता है कि ऐसे उपाय जो कानून-सम्मत पिकेटिंग के विपरीत हैं व्यवहार में नहीं लाये जायंगे। ऐसी पिकेटिंग शान्तिमय होनी चाहिए और उसमें जबरदस्ती धमकी विरुद्ध प्रदर्शन प्रजा के कार्य में बाधा और किसी कानूनी जुर्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। यदि कहीं उपरोक्त उपायों से काम लिया गया तो वहां का पिकेटिंग स्थगित कर दिया जायगा।

परिशिष्ट (२)

प्रधानमन्त्री की घोषणा

अ

[प्रथम गोलमेज-परिषद् के समाप्त होने पर ता० १९ जनवरी सन् १९३१ को प्रधानमन्त्री ने जो घोषणा की वह नीचे दी जाती है ।]

सम्राट की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं पर ही केवल संक्रमण काल के लिए सरकार उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए, विशेष परिस्थितियों और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को कायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है ।

इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो संरक्षण शासन विधान में होंगे उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हों और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई बाधा उपस्थित न हो ।

यह घोषणा करते हुए सम्राट की सरकार को यह बात ज्ञात है कि कुछ बातें जो प्रस्तावित शासन-विधान के लिए अत्यावश्यक हैं अभी पूर्णतया तय नहीं हुई हैं । परन्तु सरकार को यह विश्वास है कि इस सभा में जो कार्य हुआ है, उससे यह आशा होती है कि इस घोषणा के बाद जो बातचीत होगी उसमें वे सब आवश्यक बातें तय हो जायगी ।

सम्राट की सरकार ने यह बात जान ली है कि इस सभा की कार्रवाई जिसमें सब दलों की सम्मति है इसी आधार पर हुई है कि

भावी केन्द्रीय सरकार अखिल भारतीय संघ-शासन-पद्धति के अनुसार होगी जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की सहमति विधान सभा द्वारा होगी। उस शासन-विधान की रचना और स्वरूप का भविष्य में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राजाओं के बीच बात होकर ही निश्चय होंगे। इस शासन का अधिकार-क्षेत्र भी बाद में विचार कर ही तय होगा क्योंकि संघ-शासन के अधीन देशी राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले वे ही प्रश्न होंगे जो देशी राजा स्वयं संघ में शामिल होने पर अपनी खुशी से संघ-शासन के अधीन कर दें। देशी राजाओं का संघ में शामिल होना केवल इसी शर्त पर होगा कि राजाओं द्वारा संघ को अर्पित अधिकारों के अतिरिक्त अन्य सब विषयों में उनका सम्बन्ध सम्राट् के प्रतिनिधि वाइसराय के द्वारा सीधा सम्राट् के साथ रहेगा। कार्यकारिणी (Executive) को धारासभा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, इस नियम के अनुसार भावी सरकार संघ-शासन की धारासभा के अधीन रहेगा।

मौजूदा परिस्थिति में रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल के अधीन रहेंगे और उसको इस विषय में शासन करने के लिए उपयुक्त अधिकार देने का भी प्रबन्ध किया जायगा। इसके अतिरिक्त चूंकि असाधारण आवश्यकता आ पड़ने पर राज्य की शान्ति का भार वस्तुतः गवर्नर जनरल पर है और वही अल्पसंख्यक जातियों के कानूनी स्वत्वों की रक्षा के लिए जिम्मेवार है, इसलिए गवर्नर जनरल को इन विषयों के शासन के लिए भी उपयुक्त अधिकार रहने।

अब रहा आर्थिक अधिकारों का प्रश्न सो आर्थिक अधिकार देने के पहले इस बात की आवश्यकता है कि भारतमन्त्री द्वारा स्वीकृत आर्थिक जिम्मेवारियों के समुचित पालन का प्रबन्ध हो और भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे। संघ-विभाजक समिति की रिपोर्ट की इस सम्बन्ध में जो सिफारिशें हैं जैसे रिज़र्व बैंक की

स्थापना, ऋण-प्राप्ति का साधन और विनिमय-नीति इन सबका सम्राट् की सरकार की समिति में नये शासन-विधान में समावेश होगा है। भारत की आर्थिक व्यवस्था में संसार का विश्वास अक्षुण्ण रहे इसके लिए इन सब बातों का विधान में समावेश परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त अन्य सब आर्थिक विषयों जैसे आय के सीमे और हस्तांतरित विषयों में व्यय के नियंत्रण में भावी भारत सरकार को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय धारासभा और कार्यकारिणी (Executive) में इन शासन के चिह्न भावी विधान में विद्यमान रहेंगे।

परिस्थिति-विशेष के कारण रक्षित अधिकारों का जारी रहना अभी तो विधान में आवश्यक प्रतीत होता है और वास्तव में स्वतन्त्र-से स्वतन्त्र विधान में भी किसी-न-किसी प्रकार के रक्षित अधिकार रहते ही हैं। हां ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रक्षित अधिकारों का प्रयोग कम-से-कम किया जाने का अवसर उपस्थित हो। उदाहरणार्थ मन्त्रियों का गवर्नर जनरल से यह आशा करना कि वह अपने रक्षित अधिकारों का प्रयोग कर, उनकी अपनी जिम्मेवारी के भार को हल्का करे अनुचित होगा क्योंकि ये रक्षित अधिकार तो विषम अवस्था में ही उपयोग में आने चाहिए, नहीं तो उत्तरदायित्वपूर्ण शासन ही वृथा हो जायगा। यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए।

गवर्नर के प्रान्तों में अक्षुण्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की व्यवस्था की जायगी। प्रान्तीय मन्त्री धारासभा के सदस्यों में से होंगे और वे सम्मिलित रूप में धारासभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। प्रान्तीय शासन का अधिकार-क्षेत्र इतना विशाल होगा कि प्रान्त के शासन में अधिक-से अधिक स्वराज्य का उपयोग हो सकेगा। संघ-शासन के अधीन वही विषय होंगे जो अखिल भारतीय हैं और जिनके शासन की जिम्मेवारी विधान द्वारा संघ-सरकार को दी हुई है।

गवर्नर को केवल वही न्यूनातिन्यून अधिकार होंगे जिनसे असाधारण समय में शान्ति की रक्षा हो सके और विधान में प्रस्तावित सरकारी नौकरों और अल्पसंख्यक जातियों के अधिकार सुरक्षित रह सकें।

अन्त में सम्राट् की सरकार की धारणा है कि प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक है कि धारासभाओं में सभासदों की वृद्धि हो और मतदाताओं की संख्या में भी उपयुक्त वृद्धि की जाय।

विधान-रचना में सम्राट् की सरकार का विचार है कि ऐसी शर्तें रक्खी जायँ जिनसे न केवल अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक प्रतिनिधित्व की रक्षा का प्रबन्ध ही हो बल्कि उनको यह भी विश्वास दिला दिया जाय कि धर्म जाति तथा वर्ण आदि की विभिन्नता के कारण कोई नागरिकता के अधिकार से वंचित न रहेगा।

सम्राट्-सरकार की सम्मति में विभिन्न जातियों का यह कर्त्तव्य है कि अल्पसंख्यक उप-समितियों में उठाये हुए प्रश्नों पर, जो वहाँ तय नहीं हो सके हैं आपस में समझौता करलें। आगे की बातचीत में यह समझौता हो जाना चाहिए। सरकार इस कार्य में भरसक सहायता देगी क्योंकि उसकी इच्छा है कि नए विधान का संचालन न केवल अविलम्ब ही हो बल्कि उसके संचालन में प्रारम्भ से ही सब जातियों का सहयोग और विश्वास भी होना चाहिए।

विभिन्न उप-समितियों ने जो कि भारत के लिए उपयुक्त विधान के आवश्यक अंगों पर विचार कर रही हैं विधान के ढाँचे पर विस्तृत रूप से गवेषणा की है। अतः जो बातें अबतक तय नहीं हुई हैं वे भी इस सीमा तक पहुँच गई हैं जहाँ से समझौता दूर नहीं है। सम्राट् की सरकार इस सभा की रचना और अल्प समय जो इसको कार्य के लिए लन्दन में मिला है दोनों पर विचार करते हुए यही उचित समझती है कि अभी इसकी कार्रवाही स्थगित कर दी जाय और इसकी सफलता में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं, उनके दूर करने की विधि पर भी विचार

किया जाय। सम्राट् की सरकार शीघ्र ही एक योजना करने वाली है, जिससे हम सबका सहयोग जारी रहे और अपने श्रम के फलस्वरूप नया विधान शीघ्र ही तैयार हो जाय। यदि इस अवसर में सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन में भाग लेने वालों ने वायसराय की अपील के उत्तर में इस घोषणा के अनुसार कार्य में सहयोग देना स्वीकार किया तो उनके सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जायगा।

अब मेरा कर्त्तव्य है कि आपने यहाँ आकर प्रत्यक्ष बातचीत करके जो प्रशंसनीय सेवा भारतवर्ष की ही नहीं बल्कि इस देश की भी की है, उसके लिए मैं सरकार की ओर से आप सबको बधाई दूं। इधर कई वर्षों से दोनों ओर के अनेक पुरुषों ने बीच में पड़कर हमारे और आपके पारस्परिक सम्बन्ध में जो ग़लतफ़हमी और विभिन्नता पैदा करा दी है उसको दूर करने का सबसे अच्छा उपाय इस प्रकार प्रत्यक्ष की बातचीत ही है। इस प्रकार मिलकर एक-दूसरे के विचार और बाधाओं से जानकार होना ही पारस्परिक विरोध दूर करने और एक-दूसरे की माँग पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय है। सम्राट् की सरकार एकता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेगी जिससे नया विधान पार्लामेंट से पास होकर दोनों देश के वासियों की सद्कामना के साथ संचालन में आवे।

आ

[दूसरी गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति पर ता० १ दिसम्बर सन् १९३१ को प्रधानमन्त्री ने जो वक्तव्य दिया वह नीचे दिया जाता है]

१—हम गोलमेज़-परिषद् के दो अधिवेशन कर चुके हैं और अब समय आगया है कि भारत के भावी विधान की रचना में जो-जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं उनपर विचार करने और उनको दूर करने का प्रयत्न करने के प्रश्नों पर हमने जो मुख्य कार्य किया है उसका लेखा लें। जो विभिन्न रिपोर्टें हमारे सामने पेश हुई हैं वे हमारे सहयोग के कार्य को दूसरी मंज़िल पर पहुँचा देती हैं, और अब हमको नया विधान लेकर

अबतक के कार्य का सिंहावलोकन करना चाहिए। यहाँ यह भी देखना चाहिए कि हमने अबतक किन-किन विरोधों का सामना कर लिया है और अपने कार्य को सफलतापूर्वक शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने के लिए क्या उद्योग किया जाय। अपनी पारस्परिक बातचीत और व्यक्तिगत सम्बन्धों को मैं बड़ा मूल्यवान समझता हूँ। आज मुझे यह कहने का साहस है कि इन्हीं दो बातों ने विधान के प्रश्न को केवल शुष्क विवाद-रचना तक ही सीमित नहीं रहने दिया बल्कि हमारे हृदयों में एक-दूसरे के लिए आदर और विश्वास के भाव पैदा कर दिये जिससे हमारा कार्य एक आशापूर्ण राजनैतिक सहयोग के समान हो गया। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यही भाव अन्त तक रहेंगे क्योंकि केवल सहयोग से ही हमको सफलता प्राप्त हो सकती है।

२—इस वर्ष के प्रारम्भ में मैंने तत्कालीन सरकार की नीति की घोषणा की थी और मुझे मौजूदा सरकार की ओर से यही आदेश है कि मैं आपको और भारतवर्ष को निश्चयपूर्वक आश्वासन दिलाता हूँ कि इस सरकार की भी वही नीति है। मैं उस घोषणा के मुख्य-मुख्य भागों को पुनः घोषित करता हूँ—

"सम्राट् की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं पर हो केवल संक्रमण-काल के लिए सरकार अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए परिस्थितिवश और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को कायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है।

"इस संक्रमण-काल विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो संरक्षण शासन-विधान में होंगे उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हों और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

३—केन्द्रीय सरकार के विषय में तो मैं कह चुका था कि सम्राट् की गत सरकार ने कुछ प्रकट शर्तों के साथ यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था कि यदि भावी विधान अखिल भारतीय संघशासन-पद्धति के अनुसार हो तो कार्यकारिणी (Executive) धारासभा के प्रति उत्तरदायी होगी। शर्तें यही थीं कि फिलहाल रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल द्वारा रक्षित रहें और आर्थिक अधिकारों के विषय में इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि भारत मन्त्री इन आर्थिक जिम्मेवारियों का समुचित रूप से पालन हो जिससे भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे।

४—अन्त में हमारी यह सम्मति थी कि गवर्नर जनरल को ऐसे अधिकार दिये जायं जिनसे वह अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक अधिकार रक्षण और असाधारण समय में देश में शान्ति-स्थापन की अपनी जिम्मेवारी पूरी कर सके।

५—मोटे तौर पर यही सब चिह्न भावी भारत के शासन-विधान के लिये जो सम्राट् सरकार ने गत गोलमेज-परिषद् की समाप्ति पर विचार कर प्रकाशित किये थे।

६—जैसा कि मैंने अभी प्रकट किया है, सम्राट् की मौजूदा सरकार के मेरे सहयोगी यह जनवरी वाले मेरे वक्तव्य को अपनी नीति के अनुकूल स्वीकार करते हैं। विशेषकर वे इस बात को पुनर्घोषित कर देना चाहते हैं कि 'अखिल भारतीय संघ' ही उनकी सम्मति में भारत की विधान-सम्बन्धी कठिनाइयों की कुंजी है। वे सब इसी नीति का अविचलित रूप से अवलम्बन कर यथाशक्ति विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए चलना चाहते हैं। इस घोषणा पर अधिकार की मोहर लगाने के लिए मैं आज के वक्तव्य को 'व्हाइट पेपर' के तौर पर पार्लमेंट के दोनों भवनों में बंटवा दूंगा और सरकार इसी सप्ताह पार्लमेंट से उसे मंजूर करवा लेगी।

७—गत दो मास से जो बातचीत चल रही है, उसने हमारे प्रश्नों

को स्पष्ट कर दिया है, जिससे उनमें से कुछ को हल करना भी सहज हो गया है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि बाकी के प्रश्नों पर फिर सहयोगपूर्ण विचार करना आवश्यक है। अभी कई बातों में विचार-विभिन्नता है जैसे—संघ धारासभा की रचना और अधिकारों के विषय। मुझे दुःख है कि अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण से मुख्य प्रश्न का कुछ फैसला न होने से यह परिषद् संघ-सरकार और धारासभा के रूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में ठीक तय नहीं कर सकी। इसी प्रकार अबतक देशी राज्य भी संघ में अपना-अपना स्थान और उसमें अपने पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कुछ तय नहीं कर सके हैं। इन बातों की उपेक्षा करने से हमारे ध्येय की प्राप्ति नहीं होगी और न यह सम्भव है कि ये सब कठिनाइयाँ अपने-आप दूर हो जायँगी। अतः पूर्व इसके कि हम इन सब बातों का विधान के ढाँचे में सफलता से समावेश कर सकें आवश्यकता इस बात की है कि हम इनपर पुनर्विचार और बातचीत करें, जिससे भिन्न-भिन्न मतों और स्वार्थों का समन्वय हो सके। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि यह कार्य असम्भव है या इसके लिए हमें अधिक ठहरना पड़ेगा। मैं तो आपको यह याद दिलाना चाहता हूँ कि हमने ऐसा काम हाथ में लिया है, जिसमें सम्राट् की सरकार और भारत के नेताओं को ध्यान साहस और समय लगाना पड़ेगा ताकि ऐसा न हो कि कार्य समाप्त होने पर कुछ अव्यवस्था और निराशा हो और राजनैतिक उन्नति का द्वार सुगमें के बजाय बंद हो जाय। हमें अच्छे कारीगर की तरह ठीक और सही तौर पर कार्य करना पड़ेगा और भारत हमसे इसी कर्त्तव्य की आशा भी करता है।

—तो हमारी स्थिति अभी क्या है हमने ध्येय की प्राप्ति के लिए कौन-सा मार्ग निश्चित किया है? मैं ऐसी साधारण घोषणाएँ नहीं चाहता जो हमको आगे बढ़ाने में सहायक न हों। जो घोषणाएँ पहले की जा चुकी हैं और जिनको आज मैंने पुनः दोहराया है, वर-

कार की सद्भावना के परिचय और उन समितियों को जिनका जिक्र मैं आगे करूंगा कार्य-संलग्न करने के लिए पर्याप्त है। मैं तो व्यावहारिक होना चाहता हूं। अखिल भारतीय संघ-स्थापन का वृहद विचार अभी लोगों के दिलों में जमा हुआ है। संक्रमणकाल के लिए कुछ उपयुक्त संरक्षणों सहित उत्तरदायित्वपूर्ण संघ-सरकार का सिद्धान्त अभीतक अविकल बना हुआ है। हम सब इसमें सहमत हैं कि भावी गवर्नर के प्रान्तों के शासन में बाहर से कम-से-कम हस्तक्षेप और भीतरी प्रबन्ध में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता हो।

९—इस अन्तिम बात के विषय में मैं यह कह दूं कि भावी सुधार के फलस्वरूप सीमा-प्रान्त को गवर्नर का प्रान्त बनाने का हमारा विचार है। इसके अधिकार केवल सीमा प्रान्त की विशेष परिस्थिति के कारण कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के समान ही होंगे और उसके समान ही शान्ति-स्थापन और रक्षा के निमित्त गवर्नर को दिये हुए अधिकार वास्तविक और कारगर होंगे।

१०—सम्राट् की सरकार गत गोलमेज-परिषद् में पास हुई सिन्ध को अलग प्रान्त बनाने की सिफ़ारिश सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करती है बशर्ते कि इस प्रान्त को अपने माली भार उठाने के साधन प्राप्त हो जाय। अतः हमारा विचार भारत सरकार से यह कहने का है कि वह सिन्ध के प्रतिनिधियों के साथ यह विचार करने के लिए एक कान्फ्रेंस की आयोजना करे कि सर्व-विशेषज्ञों द्वारा इस विषय में बताई हुई कठिनाइयों को दूर करने का यत्न कैसे किया जाय।

११—मैं विषयान्तर में चला गया—हमारा विषय स्वतन्त्र प्रान्त और देशी राज्यों का सम्मिलित संघ था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं हमारी बातचीत ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि संघ की स्थापना कुछ महीने में नहीं हो सकती है। अभी तो बहुत कुछ रचनात्मक कार्य बाकी है, कई बातों पर समझौता कर उनके आधार पर अवयव-निर्माण करना है। यह तो स्पष्ट है कि प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित

करना उतना कठिन नहीं है और यह सुगमतर रीति से भी हो सकता है। अभी केन्द्रीय सरकार के पास जो अधिकार हैं उनमें घटा-बढ़ी करने में—क्योंकि प्रान्तीय स्वराज्य के लिए प्रांतों को विशेष स्वतन्त्रता से अधिकार देने पड़ेंगे—कोई खास बाधाएं उपस्थित नहीं होंगी। इसी कारण सरकार को दबाकर कहा गया है कि संघ-स्थापन करने का सुगमतर उपाय यही है कि प्रान्तों को शीघ्र स्वराज्य दे दिया जाय और इसमें यथासंभव आवश्यकता के सिवा एक दिन की भी देर न हो। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि यह इकतरफा सुधार आपको कम रुचिकर प्रतीत होता है। आप लोगों की इच्छा है कि विधान में ऐसा कोई परिवर्तन न किया जाय जिसका असर समष्टि रूप से सारे भारत पर न पड़े और सम्राट् की सरकार की भी यह मंशा नहीं है कि कोई भी उत्तरदायित्व जो किसी भी कारण से असामयिक समझा जाता हो बलात् दिया जाय। संभव है कि समय और परिस्थिति में परिवर्तन हो जाय अतः अभी शीघ्र ही ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे आगे पछताना पड़े। हमारी सदा से यह सम्मति रही है और अब भी है कि संघ-शासन स्थापित करने के प्रयत्न में शीघ्रता की जाय। परन्तु इस कारण से सीमाप्रान्त के सुधारों में विलम्ब करना भूल होगी अतः हमारा विचार है कि भावी सुधारों के लिए न ठहर कर, मौजूदा विधान के अनुसार ही अभी सीमाप्रान्त को जल्दी-से-जल्दी गवर्नर का प्रान्त बना दिया जाय।

१२—हमको यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय प्रगति के मार्ग में जातिगत प्रश्नरूपी बहुत बड़ी रुकावट पड़ी हुई है। मैंने अपनी इस धारणा को आपसे कभी नहीं छिपाया है कि इसका फैसला तो सबसे पहले आपको आपस में ही कर लेना चाहिए। स्वयंशासित जनता का प्रथम कर्तव्य और भार तो यही है कि आपस में पहले यह फैसला करले कि प्रजातन्त्र-पद्धति के प्रतिनिधित्व का प्रयोग कैसे किया जाय अर्थात् प्रतिनिधित्व किसको और कितना दिया जाय। दो बार इस परिषद् ने इस काम को हाथ में उठाया और

दोनों ही बार असफलता मिली। मैं नहीं मानता कि आप हमको यह कहेंगे कि आपकी यह असमर्थता सदा बनी रहेगी।

११—समय तीव्र वेग से दौड़ रहा है और यदि आपने ऐसा समझौता जो सब दलों को स्वीकार हो और जिसपर आगे कार्य किया जा सके पेश नहीं किया तो हमें शीघ्र ही अपने आगे बढ़ने के प्रयत्न में रुकना पड़ेगा (और वास्तव में अभी हम रुक से गये हैं)। ऐसी दशा में सम्राट् की सरकार को विवश होकर एक अस्थाई योजना बनानी होगी क्योंकि सरकार निश्चय कर चुकी है कि आपकी इस असमर्थता पर भी राजनैतिक उन्नति रुक नहीं सकती। इसका अर्थ यह होगा कि सम्राट् की सरकार आपके लिए केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही तय नहीं करेगी बल्कि यथाशक्य बुद्धिमानी और निष्पक्षता पूर्वक यह भी तय करेगी कि विधान में क्या-क्या नियन्त्रण और सन्तुलन रखने की आवश्यकता है जिससे अल्पसंख्यक जातियों के बहुसंख्यक जातियों के, जिनका प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र-शासन में हमेशा अल्पमतवाले हैं, रक्षा हो सके। मैं आपको आगाह करदूं कि विधान का यह भाग जो आप स्वयं निर्धारित नहीं कर सकते हैं यदि सरकार आपकी ओर पर भी निर्धारित करेगी तो चाहे वह कितने ही गम्भीर विचार के साथ अल्पसंख्यक जातियों के यथार्थ संरक्षणों का समावेश करे, जिससे किसीको यह शिकायत न हो कि उसकी उपेक्षा हुई है तब भी वह इस प्रश्न का सन्तोषजनक निबटारा नहीं होगा। मैं आपसे यह भी कहूँगा कि यदि आप इस विषय में किसी निश्चय पर नहीं पहुंचे तो आप निश्चय रखिए कि भारत के विधान पर हमारे तमाम विचार उसके बाद किसी भी सरकार के कार्य को अत्यधिक दुष्कर बनायेंगे और वह विधान अन्य दलों के हितों के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकेगा। अतः मैं आपसे एक बार फिर अनुरोध करता हूँ कि आप आकर पुनः इस प्रश्न पर विचार-विनिमय करें और किसी समझौते के साथ हमारे सामने पेश करें।

१४—हमारा इरादा आगे बढ़ने का है। अब हमने अपने कार्य को सिलसिलेवार कुछ विषयों में विभक्त कर लिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पहले उनपर छोटी समितियां बहुत बड़ी-बड़ी परिषदें नहीं तत्वेवणापूर्वक विचार करें और हमें उचित है कि अब इसी क्रमानुसार कार्य करने के लिए उपाय सोचें। जबतक यह कार्य हो और वे समितियां इसकी रिपोर्ट पेश करें तबतक हमारी आपकी बातचीत जारी रहनी चाहिए। अतः आपकी सम्मति लेकर मैं चाहता हूं कि एक प्रतिनिधि-समिति—इस सभा की कार्यकारिणी समिति—नामजद कर दी जाय जो भारत में ही रहे और जिसका वायसराय के द्वारा हमसे भी सम्बन्ध बना रहे। अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह समिति किस प्रकार कार्य करेगी। यह विषय तो ऐसा है जिसपर विचार करना होगा और विचार भी तब समय होगा जब हमारी प्रस्तावित समितियां अपनी विविध रिपोर्टें पेश करें। हां अन्त में हमको एक बार और मिलना होगा जिससे सब रचनात्मक कार्यों का एक बार सिंहावलोकन हो सके।

१५—हमारा यह विचार है कि परिषद् द्वारा प्रस्तावित ये समितियां शीघ्र बना दी जाय (क) जो चुनाव-क्षेत्रों और मताधिकार के विषय में जांच और विज्ञप्ति करें; (ख) जो फेडरल फाइनेंस सब कमेटी की सिफारिशों को आय-व्यय के आंकड़ों से मिलान कर जांच करें और (ग) जो कुछ देसी राज्य-विशेषों के विषयों में उत्पन्न हुए आर्थिक प्रश्नों पर और भी विचार करे। हमारा यह विचार है कि ये समितियां इस वर्ष के प्रमुख सार्वजनिक पुरुषों के अधिवेशनकाल में आगामी नए वर्ष के प्रारम्भ में ही भारत में कार्य करें। सब-विधान विषयक अन्य प्रतिनिधित्व विषयों पर जो सम्मतियां आपने प्रकट की है, उनपर हम शीघ्र ही विचार करेंगे और ऐसा उपाय करेंगे जिससे उनके विषय में भी उचित समझौता हो सके।

१—मद्रास की सरकार ने अंध-विधायक समिति की रिपोर्ट के

१९वें पैरा में प्रस्तावित राय पर भी जिसमें संघ-धारासभा में राज्यों द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधियों की संख्या को प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधित्व के विचार से विभाजित करने में आसानी होगी गौर कर लिया है। मेरे पूर्वकथन से स्पष्ट है कि देशी राजा स्वयं इस बात के इच्छुक हैं कि उनके प्रतिनिधित्व का फैसला यथासंभव शीघ्र ही हो और सम्राट की सरकार की इच्छा है कि उनको इस विषय में सम्मति के रूप में हर प्रकार की सहायता दी जाय। यदि राजाओं के आपस में इस विषय में उचित निपटारा होने में विलम्ब मालूम हुआ तो सरकार यह उपाय करेगी जिससे उचित निपटारा शीघ्र हो।

१०—दूसरे जिस विषय के बारे में कुछ कहने की आप आशा करेंगे और जो आप बड़ा आवश्यक समझते हैं उसकी कुछ चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ। जातिगत प्रश्न का ऐसा निपटारा जो केवल धारासभा में जातियों के प्रतिनिधित्व का ही फैसला करे मेरी राय में नैसर्गिक अधिकार प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। विधान में केवल ऐसी बात के समावेश से अल्पसंख्यक जातियाँ तो उसी अवस्था में ही रहेंगी। अतः विधान में ऐसी शर्तें अवश्य होनी चाहिए जिसमें सब धर्मों और जातियों को यह विश्वास हो कि राष्ट्र में बहुसंख्यक सरकार उनकी नैतिक और धार्मिक उन्नति में बाधा नहीं पहुँचावेगी। सरकार अभी यह नहीं कह सकती कि वे शर्तें क्या हैं। उनका रूप और विस्तार तो बड़े सोच विचार के बाद ही निश्चित किया जा सकता है जिसमें एक ओर तो वे अपने तात्पर्य को सिद्ध कर सकें और दूसरी ओर प्रतिनिधित्व सिद्धान्तवादी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन में भी किसी प्रकार से क्षति न पहुँचे। इस बात के तय करने में समझौता-समिति अच्छी सहायता देगी क्योंकि इस विषय के भी जातिगत मताधिकार विभाजन के समान अपनी राय के साथ तय होने में ही विधान का सफलतापूर्वक संचालन हो सकता है।

११—अब एक बार फिर हम और आप एक दूसरे से मिल

होते हैं। हममें से अधिक-से-अधिक आशावादी को जितनी सफलता की आशा थी उससे अधिक सफलता हमको प्राप्त हुई है। भाषणों में प्रतिनिधियों के मुख से ऐसे भाव सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि तथ्य भी यही है। हमारे कार्य में बाधाएं उपस्थित हुई हैं परन्तु उस आशावादी ने जिसका संसार उन्नति के लिए आभारी है, यह कहा था कि बाधाएं तो दूर करने के लिए होती हैं। इस उपदेश से जो सुरक्षा और सद्भावना की शिक्षा मिलती है, उसीके अनुसार हमें अपने कार्य में संलग्न रहना चाहिए। ऐसी परिषदों का मेरा विस्तृत अनुभव यही है कि समझौते का रास्ता शुरू में टूटा-फूटा और बाधापूर्ण होता है, अतः प्रारम्भ में प्रत्येक को एक प्रकार की निराशा-सी होती है। परन्तु एक समय आता है जब और अधिकतर अकस्मात् ही रास्ता साफ हो जाता है और मंजिले-मकसूद तक आराम से पहुंच जाते हैं। मेरी यह प्रार्थना ही नहीं है कि हमारा अनुभव भी यही हो प्रत्युत मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि सरकार सदैव यही प्रयत्न करेगी कि हमारा और आपका श्रम शीघ्र ही फलदायक हो।

●